श्रीरामकृष्ण-विवेकानंद भावधारा की एकमात्र हिंदी मासिकी

वर्ष-११ अप्रैल-१९९२ अंक-४

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा-८४१ ३०१ (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

११. श्रीमती कमला घोष—इलाहाबाद
१२. श्री एस. डी. शर्मा—अहमदाबाद
९३. श्रीमती प्रभा भार्गव—बीकानेर (राजस्थान)
९४. श्री शशिकांत मिश्र—नारायणपुर (मध्य प्रदेश)
९५. श्री के० सी० सर्राफ—बम्बई
९६. श्री ए० के० चटर्जी, आइ. ए. एस.—पटना
९७. सचिव, थियोसोफिकल लॉज—छपरा (बिहार)
९८. श्री सुभाष वासुदेव—लुमडिंग (आसाम)
९९. श्री दिलीप देसाई, बरोदा (गुजरात)
१००. श्रीरामकृष्ण आश्रम—इन्दौर (म० प्र०)
१०१. सारदापीठ विद्यालय इन्दौर (म० प्र०)
१०२. डॉ० ओमप्रकाश वर्मा—रायपुर (म० प्र०)
१०३. विवेकानन्द विद्यापीठ—भोपाल (म० प्र०)
१०४. रामकृष्ण मठ—जामतारा (बिहार)
१०५. श्री सुनील खण्डेलवाल—रायपुर (मध्य प्रदेश)
१०६. श्री वसन्त लाल गुप्ता—नागपुर (महाराष्ट्र)
१०७. श्री जयेश ब्रह्मभट्ट पुणे (महाराष्ट्र)
१०८. श्री नरेन्द्र कुमार टाक—अजमेर (राजस्थान)
१०९. श्री महन्त युक्तिरामजी—जोधपुर (राजस्थान)
११०. श्री राय मनेन्द्र प्रसाद जमशेदपुर (बिहार)
१११. कुमारी उषा हेगड़े—पुणे (महाराष्ट्र)
११२. श्री विनय प्रकाश—पुणे (महाराष्ट्र)
११३. डॉ० वी० सी० सिन्हा—रीवाँ (मध्य प्रदेश)
११४. डॉ० एच० पी० सिंह—रीवाँ (मध्य प्रदेश)
११५. मानस समिति, लुमडिंग (आसाम)
११६. श्रीरामचन्द्र गुप्त, लुमडिंग (आसाम)
११७. श्री चन्द्रकान्त स० नागपुरे (नागपुर)
११८. श्री अच्छे लाल श्रीवास्तव (उ० प्र०)
११९. संत जगदम्बिका (प्रयाग)
१२०. श्री अजय बलदवा, जयपुर (आसाम)
१२१. श्री बी० एस० दुबे, पुणे (महाराष्ट्र)
१२२. श्री पालीराम शर्मा, लुमडिंग (आसाम)

इस अंक में

१. श्री रामकृष्ण ने कहा है		
२. श्रीरामकृष्ण के प्रिय भजन	स्वामी निखिलात्मानन्द	
३. अवतार वरिष्ठ श्री श्रीरामकृष्ण	डॉ० कल्याण शंकर भट्टाचार्य	३
४. एक अचल कर्मयोगी : एक सचल तीर्थराज	डॉ० केदार नाथ लाभ	६
५. सद्गुरु की खोज	स्वामी शशांकानन्द	९
६. दुःख और दुःख निवृति	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	१५
७. विवेक चूड़ामणि	स्वामी वेदान्तानन्द	२६
८. सोने का नेवला	स्वामी विवेकानन्द	२९

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—११ | १९९२—अप्रैल | अंक—४

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक :
डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	३० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	४५ रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

शुरू-शुरू में पोधे को चारों ओर से घेरा लगाकर गाय-बकरी आदि से बचाना पड़ता है। पर एक बार वह पौधा बढ़कर बड़ा वृक्ष बन जाए तो फिर कोई भय नहीं रह जाता। तब तो सैकड़ों गाय-बकरियाँ आकर उसके नीचे आसरा लेती हैं, उसके पत्तों से पेट भरती हैं। इसी तरह, साधना की प्रथम अवस्था में स्वयं को कुसंगति और सांसारिक विषय-बुद्धि के प्रभाव से बचाना चाहिए। पर एक बार सिद्धिलाभ हो जाने से फिर कोई भय नहीं रहता। तब कुभाव या सांसारासक्ति तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकेगी। बल्कि अनेक संसारी लोग तुम्हारे पास आकर शान्ति प्राप्त करेंगे।

(२)

बीच समुद्र में जहाज के मस्तूल पर बैठा हुआ पक्षी उकताकर नई जगह जाने के लिए एक-एक करके पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी ओर उड़ आता है, पर पानी के सिवाय कहीं कुछ नहीं दिखाई पड़ता। थककर, निरुपाय होकर वह फिर मस्तूल पर ही आ बैठता है। इसी प्रकार साधक भी अनुभव सिद्ध, हितैषी गुरु के द्वारा निर्देशित साधना विधि का पालन करते-करते उकता जाता है तथा हताश हो, गुरु के प्रति विश्वास खोकर निजी प्रयत्न के द्वारा भगवत्प्राप्ति करने के लिए मनमाने साधनमार्गों में भटकने लगता है। पर उसका सब परिश्रम विफल ही होता है। अन्त में उसे हारकर उसी गुरु की शरण में लौट आना पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण के प्रियभजन

अनुगायक—स्वामी निखिलात्मानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ
इलाहाबाद

(भीमपलासी एकताल)

दोष कारो नय गो मा ।
आमि स्वखाल सलिले डुबे मरि श्यामा ।।
षड्रिपु होलो कोदंड स्वरूप, पुण्यक्षेत्र माझे काटिलाम कूप ।
से कूपे बेड़िलो काल रूप जल, काल-मनोरमा ।।
आमार कि हवे तारिणी, त्रिगुणधारिणी, विगुण करेछे सगुणे,
किसे ए वारि निवारि, भेबे दासरथिर अनिवार वारि नयने ।।
छिलो वारि कक्षे, क्रमे एलो वक्षे, जीवने जीवन केमने हय मा रक्षे,
आछि तोर अपिक्षे, दे मा मुक्ति भिक्षे, कटाक्षेते करे पार ।।

दासरथि राय

भावानुवाद (भीमपलासी एकताल)

दोष किसी का है न माँ,
निज के खोदे कुये में मैं डूब मरूँ श्यामा ।
षड़रिपु हुए कोदण्ड स्वरूप, पुण्यक्षेत्र में मैंने खोदा कूप,
उस कूप से निकला काल रूप जल, काल मनोरमा ।।
मेरा क्या होगा तारिणी त्रिगुणधारिणी, निर्गुण को करो सगुण,
निवारण कैसे हो इस वारि से सोच, दाशरथि के झरे नयन ।।
कमर भरा जल आया वक्ष तक, जीवन की हो रक्षा कब तक,
मैं तेरी शरण दे मुक्ति मरण भीख स्व कृपा कटाक्ष से ।।

अवतार वरिष्ठ श्रीरामकृष्ण

—डॉ० कल्याण शंकर भट्टाचार्य
कानपुर

अपने परिव्राजक जीवन में सारा भारतवर्ष भ्रमण करने के उपरान्त, शिकागो (अमेरिका) में विश्वधर्म सम्मेलन में दिग्विजय करने के पश्चात स्वामी विवेकानन्द ने अपने परमाराध्य गुरुदेव श्री रामकृष्ण देव को अवतार-वरिष्ठ की संज्ञा से विभूषित किया। श्री राम कृष्णदेव का जीवन और दर्शन समस्त धर्म की उत्तम बातों का सार है। यह पूर्णरूप से लिखित ऐतिहासिक सत्य है इसी कारण स्वामी विवेकानन्द जैसे विचारशील साधु ने उन्हें वरिष्ठ अवतार के रूप में ग्रहण किया। किसी भी अवतार का जीवन किंवदंतियों से वर्जित ऐतिहासिक सत्य से युक्त अक्षरशः मुद्रित नहीं है। समस्त प्रचलित धर्मों के अनुरूप साधना-पथ अपनाकर उनके विश्वासों को किसी भी प्रकार ठेस न पहुँचाते हुए स्वामी विवेकानन्द के गुरुदेव ने प्रत्येक धर्मपथ से सिद्धि लाभ की एवं 'जितने मत उतने ही पथ' का प्रवर्तन किया। ऐसा जीवन और दर्शन अतीत तथा वर्तमान के महापुरुषों में स्वामी जी को और देखने को नहीं मिला तभी उन्होंने कहा कि 'मैं जो कुछ भी हूँ अपने गुरु के कारण हूँ। अगर वह चाहें तो लाखों विवेकानन्द पैदा कर सकते हैं।'

स्वामी विवेकानन्द फरवरी १८८९ को श्री रामकृष्ण वचनामृत के लेखक श्री महेन्द्रनाथ गुप्त (मास्टर महाशय 'म') को लिखते हैं—मास्टर महाशय, आपको असंख्य धन्यवाद। आपने श्रीरामकृष्ण देव को सही और सत्य रूप से प्रस्तुत किया हैं। बड़े खेद की बात है कि बहुत ही कमलोग उन्हें समझ पाते हैं। भविष्य में जिनकी शिक्षा धरती के ऊपर अमृत-वारि की तरह बरसेगा, उस अमृत-सागर में जब मैं किसी को सम्पूर्ण रूप से डूबता हुआ पाता हूँ तब मैं आनन्द से अपने आपको खो बैठता हूँ ··· ··· ···।" १९०२ से १९३२ ई० तक पाँच खण्डों में बंगला भाषा में कथामृत प्रकाशित हुआ जिसका अंग्रेजी अनुवाद स्वामी निखिलानन्द जी ने न्यूयार्क अमेरिका से प्रकाशित करवाया। आचडुस हाक्सले नामक प्रख्यात साहित्यिक एवं दार्शनिक ने उस पुस्तक की भूमिका में लिखा····· "जीवनी साहित्य में ऐसी पुस्तक और नहीं है ··· ··· किसी देश में और किसी भी भाषा में।" आगे उन्होंने एक बात और कहीं—"जैसा कि फोटोग्राफ में होता है भाषा के जरिये वैसा ही चित्रण किया गया। तस्वीरें झूठ नहीं कहतीं। ठाकुर रामकृष्ण देव की अपनी व्यवहृत सरल उपमापूर्ण भाषा का यथार्थ चित्रण उपस्थित किया गया है, कोई अतिशयोक्ति नहीं, कहीं कोई सजावट या विकृति नहीं।"

अखण्ड बंगाल के विख्यात विद्वान श्री नगेन्द्र नाथ घोष ने 'इण्डियन नेशम' पत्रिका में १९ मई सन् १९०२ में लिखा—"वचनामृत की भाषा और शैली बाइबिल की तरह सरल है। श्रीरामकृष्ण के कथोपकथन को जिस प्रकार से लिपिबद्ध किया है वैसा यदि श्रीकृष्ण, बुद्ध, ईसामसीह, हजरत मुहम्मद साहब गुरुनानक चैतन्य महाप्रभु के दैनिदन कथोपकथन को भी लिपिबद्ध गया होता तो विश्व के मानव के

ऐश्वर्य हो जाता।" वचनामृत का पाठ करने पर हम इन उक्तियों की मर्मोपलब्धि कर पायेंगे और धर्म के असली अर्थ और रूप को जान पायेंगे।

पहली जनवरी १८८९ ई० को श्रीरामकृष्ण 'कल्पतरु' बने। परन्तु कल्पतरु बनकर उन्होंने जनमानस की आध्यात्मिक आकांक्षा की पूर्ति की। उपस्थित भक्तजनों को आशीर्वाद दिया 'तुमलोगों को चैतन्य हो, यही वास्तविक आशीर्वाद है।' हम लोग एक अज्ञान अवस्था में किसी न किसी भौतिक नशे में ग्रस्त होकर एक अर्द्ध-उन्मादग्रस्त अवस्था में जीवन बिताते चले जाते हैं। यह नशा कामिनी कांचन, यश या किसी भी भौतिक वस्तु की है। किसी भी स्थायी आनन्द या शास्वत वस्तु की प्राप्ति के लिए न हममें आत्मविश्वास है और न हो आत्मसंयम या समर्पण। श्री रामकृष्ण देव यही चैतन्य हमें दिलाना चाहते थे। उनका वचनामृत हमें आध्यात्मिक मकड़ी के जाले से छुड़ाकर सीधा सत्य तक अति सरल तरीके से पहुँचाता है।

सारा भारतवर्ष भ्रमण करने के पहले, ईश्वर दर्शन के प्रयास में विफल होकर नरेन्द्रनाथ (बाद में विश्व विख्यात सन्यासी स्वामी विवेकानन्द) श्री रामकृष्ण के समीप उनकी आध्यात्मिक प्रशंसा सुनकर पहुँचे और सीधा-सीधा उनसे पूछा 'क्या आपने ईश्वर को देखा है? क्या मुझे आप ईश्वर दिखा सकते हैं' तो तुरन्त बिना झिझक के श्री रामकृष्ण ने उत्तर दिया 'हाँ मैंने देखा है और तुझे भी दिखा सकता हूँ।' धर्म जीवन की सबसे सीधी बात और सबसे सीधा उत्तर। वैसा उत्तर स्वामी जी को कहीं भी किसी भी साधु महात्मा से नहीं मिल पाया था। पूजा, पाठ, हवन, यज्ञ, जाप इन सबका हमारा क्या उद्देश्य है—ईश्वर लाभ। उसी का पथ श्री रामकृष्ण बताते हैं। श्री राम कृष्ण देव का कहना था कि धर्म के वाह्य आडंबरों से क्या लाभ? रूढ़िवादिता से क्या लाभ अपने को धार्मिक प्रचार करवाकर क्या लाभ? सबकुछ करने के बाद यदि ईश्वर ही नहीं मिला तो सब व्यर्थ। श्री रामकृष्ण सहज उदाहरण से समझाते हैं कि मालिक के बाग में कितने पेड़ हैं, उनकी कितनी जमीन जायदाद है यह मालिक के नौकरों से पूछने से क्या लाभ? सीधा जाकर मालिक से मिलो वह तुम्हें अपने ऐश्वर्य का सही हिसाब स्वयं दे देंगे। अर्थात् किसी भी रास्ते से किसी भी पथ से चलो पर चलकर ईश्वर दर्शन कर लो और नचिकेता की तरह (कठोपनिषद में वर्णित) ईश्वर से स्वयं ही जन्म मृत्यु का रहस्य पूछ लो, जान लो विश्व ब्रह्माण्ड के बारे में। इन्हीं बातों को स्वामी विवेकानन्द साधारण भक्तजनों को खुले शब्दों में समझाते थे—स्वामीजी श्रीरामकृष्ण के भाष्य हैं इसीलिए रामकृष्ण वचनामृत के साथ स्वामीजी की रचनावलियों को पढ़ना चाहिए। ताकि हम ठाकुर जी के उपदेशों का यथार्थ मर्म हृदयंगम कर सकें और यथार्थ धर्म-जीवन अपनाकर अपने भीतर उपस्थित देवत्व को बढ़ाकर दानवत्व को कम कर सकते हैं। मनुष्य अपने अन्दर छुपे दानवत्व के कारण ही ईश्वर के नाम पर झगड़े करते हैं अन्यथा रामकृष्ण के अनुसार एक वस्तु नाम अनेक हैं। कोई ईश्वर कोई अल्लाह कोई गॉड और कोई और नाम से पुकारता है, फिर झगड़ा कैसा? धर्म के नाम लेकर दंगे फसाद करने वाले अपराधियों गुण्डों बदमाशों का न तो कोई धर्म है और न ही कोई मजहब। वे तो केवल असामाजिक तत्व हैं, दानव हैं।

इसी प्रकार श्रीरामकृष्ण का कहना है ज्ञान कर्म भक्ति जिस रास्ते को अपनाओ, आन्तरिक भाव से ईश्वर को पुकारो, वह मिल जायेंगे। देश और विदेश के मनीषियों ने जैसे रोम्याँ रोलाँ, क्रिस्टोफर ईशरवुड आर्नल्ड टॉयनवी जैसे विख्यात विद्वानों ने श्री रामकृष्ण के बारे में विशेष सम्मान प्रदर्शन किया। उस युग के समस्त साधु समाज ने बार-

बार इस बात को दूहराया कि श्रीराम, श्रीकृष्ण बुद्ध, शंकराचार्य, रामानुज श्रीचैतन्य कबीर नानक जैसे महान सन्तों एवं अवतार पुरुषों का समन्वय श्री रामकृष्ण में हुआ। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें "अवतार वरिष्ठ" कहकर सम्बोधित किया और स्तुति में आरतिस्तव की रचना की— "स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्म स्वरूपिणे। अवतार वरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः" एक ही ईश्वर युग युग में अवतीर्ण होते हैं। कोई भी रूप एक दूसरे से पृथक नहीं है विभेद केवल उनकी शक्ति के प्रकाश में है अभिव्यक्ति में है। जिस युग में जितना प्रयोजन है अवतार पुरुष उतनी ही शक्ति प्रकट करते हैं।

उन्नीसवीं सदी को यान्त्रिक सभ्यता के बढ़ते कदमों के साथ आध्यात्मिक और नैतिक पतन को रोकने के लिए समस्त धर्मों में सद्भाव और समन्वय कायम करने के लिए तथा विज्ञान और मानसिक उत्कर्षता में संतुलन लाने के लिए भगवान ने पुनः वरिष्ठ अवतार श्री रामकृष्ण के रूप में अवर्त्तीण होकर आगामी पाँच शतकों तक आधुनिक मानव को मार्ग दर्शन कराने का बीड़ा उठाया। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण गीतामें अर्जुन को कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥
(गीता ४/६)

मेरा जन्म नहीं है, मेरी मृत्यु भी नहीं। मैं अव्यय हूँ। मैं समस्त प्राणियों का ईश्वर हूँ। तब भी मैं अपनी प्रकृति को अधीन करके अपनी योग माया से प्रकट होता हूँ। अर्थात् बार-बार जन्म ग्रहण करता हूँ। श्रीरामकृष्ण देव भी कहते थे— भगवान नर देह में अवतीर्ण हो सकते हैं—यदि वे इच्छा करें। अनुग्रहाय भूतानाम मानुषं देहमास्थितः (भागवत १०/१३/३७) प्राणियों पर अनुग्रह करने के लिए वह मनुष्य देह धारण करते हैं। श्रीरामकृष्णकहते हैं कि भक्तों के प्रेम की खातिर वे अखण्ड सच्चिदानंद चौदह आने होकर अर्थात् खण्डित होकर लीला रचने के लिए अवतीर्ण होते हैं। ऐसा वह भक्तों के कल्याण के लिए करते हैं। विवेकानन्द के प्रख्यात शिष्य शरत चन्द्र चक्रवर्ती श्रीरामकृष्ण के स्वरूप को समझाते हुए कहते हैं— जिनकी शक्ति से हमारा समस्त कृतित्व है, विश्व-चराचर की सकल सृष्टि जिनसे उत्पन्न होती है वही हैं श्रीरामकृष्ण। इसीलिए स्वामीजी महापुरुष महाराज जी को लिखते हैं कि वेद-वेदान्त पुराण भागवत में क्या है यह समझ पायेंगे यदि हम श्री रामकृष्ण को पढ़े और समझें। बाइबिल में एक अति परिचित उक्ति है– जिसने मुझे (ईसा मसीह को) जान लिया है उसने ईश्वर को जान लिया है, देख लिया है। ठाकुरजी की ही उपमा है— यदि कोई गँगा जी के पास पहुँच कर गंगाजल स्पर्श कर लिया है उसे हरिद्वार से लेकर गंगासागर तक गंगा जी को स्पर्श करने का प्रयोजन नहीं है। वैसे ही यदि आज का मानव श्रद्धा से श्रीरामकृष्ण के जीवन और दर्शन को जान पाये स्पर्श कर पाये तो वह समस्त धर्मों का सारतत्व पा जायेगा। कृत कृत्य हो जायेगा। परन्तु बड़े खेद की बात है कि हमारे आंगन में इतने मणि माणिक्य पड़े रहने के बावजूद हम कामिनी कांचन में मग्न हैं शोकाकुल और तनावपूर्ण जिन्दगी रेंगते हुए भी जी रहे हैं और ठाकुर जी और स्वामी जी का सहारा नहीं ले रहे हैं। ठाकुर जी और स्वामी जी की वाणी के द्वारा इस आधुनिक यांत्रिक युग यन्त्रणा से मानसिक क्षति से हम अनायास मुक्ति पा सकते हैं—यदि हम उनको पढ़ें। वचनामृत को पढ़ें, स्वामी जी रचनावलियों को पढ़े। रवीन्द्र नाथ की उक्ति में हम सम्पूर्ण विश्वास से कह सकते है कि अचानक आलोक की ज्योति से हमारा चित्र आलोकित हो जायेगा। जातपाँत रुढ़िवाद अन्धविश्वास धर्मों के अजूबे झगड़ों से मन हमारा उठकर उस तूरीय अवस्था की ओर दौड़ेगा

जिसकी प्राप्ति प्रत्येक धर्म की चरम अवस्था है। यही है चरमसत्य की उपलब्धि।

विश्वविख्यात इतिहासकार आर्नल्ड टायनवी श्री रामकृष्ण देव के लिए अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए कहते हैं "श्री रामकृष्ण भारत के ५००० वर्ष के प्राचीन आध्यात्मवाद के द्रवीभूत रूप हैं।" हम उस अमृत का बून्द-बून्द पान कर सकते हैं।

□

स्वामी विरेश्वरानन्द जन्मशती समारंभ पर स्मृति अर्घ्य

एक अचल कर्मयोगी : एक सचल तीर्थराज

डॉ० केदार नाथ लाभ

भारत महामानवों का सागर रहा है। रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के चिरस्मरणीय दसवें महाध्यक्ष पुण्यश्लोक श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज इस सागर की, किसी शरद पुनी की रात में उठने वाली एक उच्छल, अकलुष महातरंग थे। लगभग ७० वर्षों तक रामकृष्ण संघ में, एक ब्रह्मचारी से लेकर महाध्यक्ष तक के कई पदों पर रहकर विभिन्न रूपों में विश्व-मानवता की अविस्मरणीय महत सेवा करने वाले स्वामी वीरेश्वरानन्द को ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों ने महानदियों की भांति उनकी चेतना में स्वयं को समाहित कर उनके व्यक्तित्व को महासागर की गरिमा प्रदान की थी। आप स्वयं कल्पना कीजिए, जिस व्यक्ति को उसकी पाँच वर्ष की अवस्था में स्वामी विवेकानन्द की दिव्य दृष्टि की अमृतधारा में अभिषिक्त होने का सुअवसर मिला हो, चौबीस वर्ष की आयु में साक्षात् श्री श्री माँ शारदा देवी से मंत्र दीक्षा लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो तथा पच्चीस वर्ष के वय में श्री रामकृष्ण के मानस पुत्र स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज से ब्रह्मचर्य-दीक्षा एवं पुनः उन्हीं से अट्ठाइसवें वर्ष की आयु में संन्यास की दीक्षा प्राप्त करने का मणिकांचन योग मिला हो, उस व्यक्ति का गौरव कैसा होगा! प्रभु ईसा मसीह ने कहा था—'जिसने पुत्र को देखा है, उसने पिता को भी देख लिया। अतः स्वामी ब्रह्मानन्द मानो श्री रामकृष्ण के ही प्रतिरूप थे और इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि-दीक्षा, श्रीमाँ सारदा की मंत्र-दीक्षा तथा श्री रामकृष्ण के रूप में स्वामी ब्रह्मानन्द की ब्रह्मचर्य और संन्यास दीक्षा से प्रदीप्त स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज एक रूप सचल तीर्थराज हो गए थे। इन एक में मानो तीनों महाशक्तियाँ समाविष्ट हो गयी थीं।

अद्भुत था उनका जीवन। विलक्षण थी उनकी प्रेरकवाणी, शरतकालीन ओस बिन्दुओं की भाँति नीरव-निस्पन्द थी उनकी लोक हितैषिणी अविरल-अखंड कर्मधारा। अन्तर्जीवन को अचिर आलोकित कर देने वाली उनकी अनाविल दृष्टि। शीतलता की वृष्टि करने वाला होता था उनका अनुपम हास्य-विनोद और एक अनिर्वचनीय आनन्द के लोक में प्रतिष्ठित कर देने वाला था उनका मधु-स्पर्श। अखिल विश्व में फैले ७५ हजार से अधिक इनके गृही एवं संन्यासी शिष्य तथा उनकी कृपा और करुणा के सम्पर्क में आने वाले असंख्य

सौभाग्यशोल नर-नारी उनके इन अद्भुत गुणों के साक्षी हैं।

बिहार की माटी के अनुपम उपहार लाटू महाराज (स्वामी अद्भुतानन्द) सचमुच श्री रामकृष्ण के अद्भुत चमत्कार थे। अपढ़ लाटू महाराज ने श्रीरामकृष्ण का सान्निध्य प्राप्त कर, इनकी एक लघु कृपा-दृष्टि से ही आध्यात्मिक अनुभूतियों के चूड़ान्त शिखर का आरोहण कर लिया था, धर्म जीवन की उच्चतम अवस्था प्राप्त कर ली थी। प्रभु महाराज (स्वामी वीरेश्वरानंद) स्वामी विवेकानन्द की दैवी दृष्टि के विलक्षण चमत्कार थे। स्वामी जी ने प्रभु महाराज को उनके पांचवें वर्ष की वय में देखा था--अपनी गहन दृष्टि से देखा था। इस देखने का, उस दृष्टि का सुपरिणाम होना था। हुआ। प्रभु पाँडुरंग, कालान्तर में वीरेश्वर (स्वामी विवेकानन्द के बचपन का एक नाम) के भावादर्शों को एक रचनात्मक रूप देने वाले प्रतिनिधि हो गये, पुरोधा हो गये। आप इस दृष्टि दीक्षा की ऐतिहासिक घटना को जान लें।

फरवरी १८९७ का वह गौरवोज्जवल दिन था—संभवतः ६ से ९ फरवरी के बीच का कोई दिन। स्वामी विवेकानन्द पश्चिमी देशों में हिन्दू धर्म की विजय-वैजयन्ती फहराकर भारत लौटे हैं। वह मद्रास के कैसूल कर्नाल भवन में ठहरे हैं। असंख्य नर-नारी उनके दर्शन के लिए उमड़ पड़े हैं। उन्हीं के बीच हैं—एक सज्जन। उनकी गोद में पाँच वर्ष का एक शिशु है। शिशु नहीं जानता था कि वह किसे देखने आया है। बाद में उसने जाना कि वे ही थे—स्वामी विवेकानन्द। शिशु का नाम था पांडुरंग बाद में प्रभु महाराज या स्वामी वीरेश्वरानन्द के नाम से विख्यात—रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के दशम् अध्यक्ष। स्वामी वीरेश्वरानन्द से यह पूछने पर कि 'क्या आपने स्वामी विवेकानन्द को देखा है?" उपर्युक्त घटना के आधार पर वे अपनी स्वाभाविक कौतुकप्रियता से उत्तर देते—'मैंने स्वामी विवेकानन्द को देखा था या नहीं, इसके विषय में कुछ नहीं कह सकता, किन्तु स्वामी जी ने मुझे अवश्य देखा होगा।'

स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज के शरीर का वजन था मात्र २६ किलोग्राम। छोटा कद। दुबला-पतला शरीर। अस्थियों का एक ढाँचा मात्र। भोजन इतना कम कि एक डाक्टर ने उनसे कभी कहा था--'महाराज इतना कम भोजन नहीं करें। शरीर पोषण के लिए आवश्यक कैलोरीज से बहुत कम आप लेते हैं। कैसे शरीर ठहरेगा?' प्रभु महाराज ने हंसते हुए कहा—'देखो, तुम्हारा मेडिकल साइंस फेल कर गया न! मैं तो इसी भोजन पर इतने वर्षों से जीवित हूँ। और पूज्य प्रभु महाराज उसी दो-चार चम्मच भोजन पर ९३ वर्षों तक अद्भुत रूप से अत्यन्त सक्रिय और कर्मठ जीवन जीते रहे।

वस्तुतः यह तो स्वामी वीरेश्वरानन्द की बाह्य शरीर-यष्टि थी। उस शरीर के भीतर एक और शरीर था—बड़ा सबल-सशक्त और विस्मयकारी। उस आन्तरिक शरीर में एक अद्भुत चेतना तरंग, एक विद्युत शक्ति, एक अपूर्व उर्जा-धारा सदैव लहराती रहती थी। वह चेतना तरंग, वह विद्युत शक्ति, वह ऊर्जा थी उनमें पूर्णतः विकसित और निहित गुरु शक्ति की।

गुरु शक्ति। अर्थात् सच्चिदानन्द परमात्मा की प्रकट शक्ति। यह वही शक्ति थी जो उनके मुखमंडल पर एक बालक की भाँति निष्कलुष, किन्तु चुम्बकीय हास बनकर तैरती रहती थी। यह वही शक्ति थी जो उनमें प्रतिपल आनन्द का ज्वार उठाये रहती थी। यह वही शक्ति थी जो उनमें अनन्त दग्ध-दुःखी, शोषित-पीड़ित, लांक्षित-उपेक्षित, निःस्व निर्धन प्राणियों के लिए अशेष करुणा का संचार कर उनमें सुख, सम्बर्द्धन, प्रगति और विकास के लिए कल्याण और मंगल के लिए अपरिमित आशीष की सार्थक वर्षा करवाती रहती थी। और यह वही शक्ति थी। जो नारियों के अभ्युत्थान

के लिए, युवकों के कल्याण के लिए, दीन-दरिद्रों के जीवन में नये विहान के लिए तथा भारत के सर्वांगीण विकास के अभियान के लिए उनसे नयी-नयी योजनाओं की परिकल्पना करवाकर उन्हें साकार रूप देने का मंत्रोच्चार कराती रहती थी।

१९६६ ई० में वे रामकृष्ण मठ एवं मिशन के महाध्यक्ष बने। और तबसे महासमाधि लेने तक, १९ वर्षों के दीर्घकाल तक संघ गुरु के रूप में जो कार्य उन्होंने किए वे चकित-चमत्कृत कर देने वाले हैं। न केवल देश विदेश के ७५ हजार से अधिक लोगों को उन्होंने मंत्र दीक्षा दी थी, बल्कि असंख्य लोगों को उन्होंने आध्यात्मिक मार्ग दर्शन भी किया था। अनगिनत लोग अपने निजी जीवन की भौतिक, पारिवारिक और सामाजिक समस्यायें लेकर भी उनके समक्ष उपस्थित होते थे और वे सबकी सहायता के लिए, सबकी समस्याओं को धीरता पूर्वक सुनने और उनके उपयुक्त समाधान प्रस्तुत करने के लिए सदैव उपलब्ध रहते थे। रामकृष्ण संघ के विश्वव्यापी सभी केन्द्रों (मनसाद्वीप को छोड़कर) पर उन्होंने पदार्पण किया था। रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के द्वितीय महाधिवेशन के आयोजन के मूल में उनकी प्रेरक शक्ति ही कार्य कर रही थी। सारे भारत में रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से प्रेरित होकर आयोजित किये जाने वाले युवा सम्मेलनों के पीछे भी वे ही चेतना-धारा का कार्य कर रहे थे। उन्हीं की प्रेरणा से रामकृष्ण मिशन द्वारा गाँवों के विकास की कई योजनाओं का सूत्रपात किया गया। राँची स्थित दिव्यायन और पश्चिम बंगाल के हुगली एवं बांकुड़ा जिलों के कामारपुकुर, जय रामवाटी एवं बालीदीवानगंज में संचालित पल्लीमंगल आदि ऐसी ही परियोजनाएँ हैं।

नारियों की अवस्था के सुधार में उनका विशेष ध्यान रहता था। 'शारदा पीठ' की स्थापना उसी दिशा में किया गया उनका एक महत् प्रयास है।

श्री रामकृष्ण ने प्रार्थना की थी, 'माँ, मुझे शुष्क संन्यासी मत बनाओ। मुझे रस में, आनन्द में डुबाये रखो' और माँ ने उनकी प्रार्थना सुनी थी। वे आनन्द की हाट हो गये थे। स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज भी आनन्द की प्रतिमूर्ति थे। सहज हास और विनोद प्रियता उनका स्वाभाविक धर्म हो गयी थी। हृदय में माँ की ममता, मस्तिष्क में स्वामी विवेकानन्द के आदर्शों को चरितार्थ करने का आकंठ आवेग और आत्मा में ब्रह्मानन्द का भाव। इन्हीं त्रिगुणात्मिका शक्तियों ने उनके जीवन को आलौकिकता प्रदान कर दी थी।

ब्रह्मलीन होने के बहुत पूर्व स्वामी विवेकानन्द ने एक दिन भगिनी निवेदिता से कहा था, "यदि मैं 'हर! हर! हर! उच्चारण करते हुये अहना शरीर-त्याग करूँ तो वह मेरी महामृत्यु होगी।" और ऐसा ही हुआ था। स्वामी वीरेश्वरानन्द ने भी कुछ इसी प्रकार अपना महाप्रयाण किया। १९८५ के फरवरी माह से उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। १२ मार्च की रात में उनकी अवस्था गम्भीर हो गयी। १३ मार्च की सुबह स्वास्थ्य में कुछ सुधार हुआ। दिन के ढाई बजे सेवक से गंगाजल माँगकर ग्रहण किया। फिर रामकृष्ण का चरणामृत भी पान किया। प्रसन्नतापूर्वक श्री रामकृष्ण, श्री श्री माँ सारदा देवी, स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी ब्रह्मानन्द के नाम लेकर उनके प्रति प्रणाम अर्पित किए। सभी भक्तों तथा साधु ब्रह्मचारियों के प्रति आशीर्वाद ज्ञापन किया और तीन बजकर १० मिनट पर ब्रह्म बेला में तीन दीर्घ निःश्वास लेकर आनन्दपूर्वक महाप्रयाण किया। जैसे उन्होंने अपने शरीर के जीर्ण वस्त्र को स्वेच्छा से उतार दिया हो। ज्योति का एक महाज्वार ज्योति के महासागर में मिल कर एकाकार हो गया। ब्रह्मज्ञ ब्रह्म से तदाकार हो गया। ◻

सद्गुरु की खोज

स्वामी शशांकानन्द,
प्राचार्य, रामकृष्ण मिशन समाज सेवक
शिक्षण मन्दिर
बेलुड मठ, हावड़ा

प्रश्न तो यह है कि क्या सद्गुरु खोजने की वस्तु है ? यदि खोजें भी तो क्या कोई ऐसा यंत्र है जिसके द्वारा हम सद्गुरु की योग्यता को माप सकें ?

हमारे पास अपना मन ही एक मात्र यंत्र है जिसके द्वारा हम दूसरे को परखना चाहते हैं। जब तक शिष्य का मन पवित्र नहीं होता, ईश्वर प्राप्ति के लिए व्याकुल नहीं होता; ईश्वर के अतिरिक्त उसे और कुछ भी अच्छा नहीं लगता, तब तक उसका यंत्र सत्गुरु के स्वरूप को नहीं पहचान सकता। और यदि वह प्रयत्न करे तो धोखा ही हाथ लगेगा क्योंकि मलीन मन से सद्गुरु को खोजने वाला एक ऐसे व्यक्ति में सद्गुरु की भावना कर बैठता है जो ईश्वर प्राप्ति के स्थान पर उसे उसके भीतर छुपी क्षुद्र वासनाओं को पूर्ति करा देने का आश्वासन देता है। ऐसे लोग कहते हैं कि गुरु तो उसको बनाना चाहिए जिनकी कृपा से व्यापार में लाभ हो, नौकरी में तरक्की हो, लड़की का विवाह हो जाए, लड़के की नौकरी लग जाए इत्यादि। कोई-कोई तो गुरु उसको बनाना चाहेंगे जो कुछ चमत्कार दिखा सकें जैसे शिष्य को देखते ही उसके मन में उठते विचारों को जान लें, जो घने जगल में अकेले रह कर ऐसी शक्तियाँ प्राप्त कर चुके हों कि आसन समेत जमीन से ऊपर उठ जावें या आकाश मार्ग से विचरण कर सकें या भविष्य की बातें बता सकें इत्यादि।

रामचरितमानस में राजा प्रताप भानु का प्रसङ्ग देखिए। राजा प्रताप भानु बड़े ही धर्मात्मा थे। वे छत्रपात हो गये और उन्होंने धर्म क्षेत्र में भी बड़े-बड़े यज्ञादि किये। एक बार राजा शिकार खेलने विन्ध्याचल पर्वत गये। राजा ने वन में एक जंगली सूअर देखा तो उसका शिकार करना चाहा। पर वह सूअर बड़ा ही छली था, राजा को दूर वन में ले गया। सूअर का पीछा करते-करते राजा भटक गये और जंगल से निकलने का पथ न खोज सके। सूअर अदृश्य हो गया और राजा थके और प्यासे जल की तलाश में भटकते हुए एक मुनि के आश्रम में जा पहुँचे जहाँ कपट से मुनि का वेष धारण कर एक राजा रहता था जिसका देश प्रताप भानु ने छीन लिया था। अपने बुरे दिन और प्रताप भानु के अच्छे दिन देखकर उसे बड़ी ग्लानि हुई। वह अपने घर भी नहीं गया और प्रतापभानु के सामने अपने को समर्पण भी नहीं किया। तब से ही तपस्वी वेष में वह यहाँ रहता था।

राजा प्रताप भानु ने महामुनि को प्रणाम् किया परन्तु राजनीति में निपुण राजा ने अपना नाम नहीं बताया। मुनि ने राजा को प्यास से व्याकुल देखकर सरोवर दिखा दिया। राजा जल पीकर थकावट मिटाकर सुखी हो गया। तब कपटी मुनि ने राजा से कहा—

को तुम्ह कस बन फिरहु अकेले।
सुन्दर जुवा जीव पर हेलें॥
चक्रवर्ति के लच्छन तोरें।
देखत दया लागि अति मोरें॥

अर्थात्—तुम्हें देखकर मुझे दया आती है कि तुम किस कारण से वन में अकेले फिर रहे हो। तुम्हारे लक्षण तो चक्रवर्ती राजा के हैं तुम्हारे साथ तो तुम्हारे अंगरक्षक और सेना होनी चाहिए।

राजा ने बड़ी चतुराई के साथ अपना परिचय गोपन रखते हुए कहा—

नाम प्रतापभानु अवनीसा।
तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा॥
फिरत अहेरें परेउ भुलाई।

'हे मुनि! सुनिए। आपने राजा प्रतापभानु का नाम तो सुना ही होगा। मैं उन्हीं का मंत्री हूँ। शिकार से लौटते हुए रास्ता भूल गया हूँ।

किन्तु मुनि के चमत्कार ने राजा को बड़ा ही प्रभावित किया। मुनि ने उनके चक्रवर्ती लक्षणों को पहचाना है इसी शक्ति से प्रभावित होकर उन्होंने कहा—

फिरत अहेरें परेउ भुलाई।
बड़े भाग देखेउँ पद आई॥
हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा।
जानत हौं कछु भल होनिहोरा॥

हे मुनि। यह तो मेरा सौभाग्य है कि आपके चरण दर्शन कर सका। आज आपके दुर्लभ दर्शन पाकर मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरा कुछ भला होने जा रहा है।

मुनि ने पुनः राजा से कहा, "तुम्हारा नगर सत्तर योजन दूर है और अब अंधकार हो चला है इस घोर अंधकारमयी रात्रि में तुम रास्ता न खोज पाओगे। आज रात्रि यहीं रहकर कल सुबह होने पर चले जाना।" राजा ने तुरन्त मुनि की आज्ञा शिरोधार्य कर घोड़ा वृक्ष से बांधा और वहीं ठहर गये।

राजा तो अब मुनि की बहु भाँति प्रशंसा करने और मुनि की वंदना कर अपने भाग्य की सराहना करने लगे। फिर बड़ी ही विनय के साथ राजा ने मुनि से कहा,

मोहि मुनीस सुत सेवक जानी।
नाथ नाम निज कहहु बखानी॥

हे मुनिवर! मुझे अपना सुत और सेवक जानकर अपना परिचय दीजिए।

मुनि ने कहा, 'नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत॥'

अर्थात् हमारा न तो घर-बार है न धन दौलत। तरुतल छाया ही हमारा घर है और करतल भिक्षा ही हमारा धन। राजा के हृदय में मुनि का स्थान इतना गहरा होता जा रहा था कि कपटी मुनि में भी उन्हें सद्गुरु के लक्षण दीखने लगे। और उन्होंने कहा,

तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा।
होत बिरंचि सिवहि संदेहा॥

हे मुनि! आप जैसे दिव्य पुरुष यदि निर्धन और गेह रहित हों तो इसमें संदेह नहीं कि आप या तो ब्रह्माजी हैं या भगवान शिव हैं।

जोसि सोसि तव चरन नमामी॥
मो पर कृपा करिअ अब स्वामी॥

अर्थात् आप जो भी हों मैं आप के चरणों में प्रणाम् करता हूँ। हे स्वामी! आप अब मुझ पर कृपा कीजिए।

राजा ने मुनि के रूप में सद्गुरु की खोज आरम्भ की। मुनि जी ने अपने ही मुख से अपने लक्षण बताने शुरू किये।

सुनु सति भाउ कहउँ महिपाला।
इहाँ बसत बीते बहु काला॥

'हे राजन्। सुनो, मैं सच कहता हूँ कि यहाँ रहते हुए मुझे बहुत अर्से हो गये हैं।'

'हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं'

भगवान् श्री हरि को छोड़कर मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। अर्थात् मैं सर्वत्यागी, विषय रहित हूँ।

ऐसा वचन सुनकर राजा के मन में मुनि के प्रति बहुत विश्वास उपजने लगा। राजा के चेहरे पर विश्वास के लक्षण देखकर मुनि ने उसे और भी चौंका दिया। उन्होंने कहा,

नाम हमार एकतनु भाई।

हे राजन्। मेरा नाम एकतनु है।' ऐसा सुन कर राजा और भी चकित हुए कि इस एक तनु का अर्थ अवश्य ही कुछ रहस्यपूर्ण होगा। राजा के पूछने पर मुनि ने कहा,

आदि सृष्टि उपजी जबहिं तब उत्पति भै मोरि।
नाम एकतनु हेतु तेहि देह न धरी बहोरि॥

अर्थात्—सृष्टि के आदि में ही मेरा जन्म हुआ है और उसके बाद शरीर परिवर्तन हुआ ही नहीं यानि कि इस एक ही शरीर में हूँ, इसीलिए मेरा नाम एकतनु है।

मुनि ने पुनः कहा कि इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। तपोबल से सब कुछ सम्भव है। तप बल के द्वारा ही ब्रह्माजी सृष्टि करते हैं, भगवान शंकर संहार करते हैं और विष्णु पालन करते हैं। और फिर मुनि ने इतिहास, पुराण की कथाएँ वर्णन कीं। सृष्टि के उद्भव, पालन और प्रलय की कहानियाँ कहीं, विरति और विवेक की व्याख्या सुनायी। राजा यह सब सुनकर मुनि के वश हो गए और अपने को उनके समर्पण कर दिया।

जब कपट मुनि ने राजा से कहा "हे राजन! मैं जानता हूँ कि तुमने अपना असली परिचय नहीं दिया है। तुम्हारा नाम प्रताप भानु है और तुम्हारे पिता का नाम सत्यकेतु। किन्तु मुझे तुम्हारा यह व्यवहार भला ही लगा क्यों कि राजनीति तो यही कहती है कि राजा को सहज में अपना परिचय नहीं देना चाहिए। तुम्हारे सहज भाव और नीति में निपुणता देखकर मेरे मन में तुम्हारे प्रति बहुत प्रेम उठ रहा है। तुम जो चाहो वर माँगो।"

राजा ने देखा कि मुनि तो मन की सब बात जान लेते हैं। मेरा और मेरे पिता का नाम भी बोल दिया। तब तो निश्चय ही पहुँचे हुए महात्मा हैं। अब इनसे अच्छा सदगुरु और कौन हो सकता है? अतः गोस्वामी जी कहते हैं।

सुनि सुवचन भूपति हरषाना।
गहि पद विनय कीन्ह विधि नाना॥

मन को भाने वाले मुनि के वचन सुनकर राजा को बहुत ही हर्ष हुआ। मानों उसे बहुत बड़ी सम्पदा मिल गयी, जीवन सार्थक हो गया। उन्होंने कहा,

कृपा सिंधु मुनि दरसन तोरें।
चारि पदारथ करतल मोरे॥

हे कृपा सिंधु मुनिवर! आपके दरशन कर तो मुझे चारों पदार्थ हाथ लग गये हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी प्राप्त हो गये हैं। तब भी क्यों कि आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं तो मुझे यह वर दीजिए कि मुझे कोई शोक न हो।

जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ।
एक छत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ॥

हे मुनिवर मुझे यह वर दीजिए कि मुझे जन्म मरण के दुःख से छुटकारा मिल जाए। किन्तु अन्तर यह है कि एक मुक्ति की कामना वाला मुमुक्षु जन्म मरण से अपनी आत्मा को मुक्ति दिलाना चाहता है और शरीर नहीं चाहता किन्तु यहाँ प्रताप भानु ऐसा शरीर चाहता जो अब न तो मरे और न पुनः जन्म ले अर्थात् यह शरीर ही अजर अमर हो जाए। उसे कोई युद्ध में न जीत सके। एक सौ कल्पों तक शत्रुहीन एकछत्र राज्य करता रहे।

राज्य भोग की कामना वाला प्रताप भानु का मन इस अनित्य संसार को सत्य मानता था और इसीलिए ईश्वर की कामना से रहित सद्गुरु की

खोज में एक ऐसे गुरु की खोज कर बैठा जो उसे ईश्वर प्राप्ति की ओर न ले जाकर उसके मन की मलीन वासनाओं की पूर्ति का लोभ दिखाकर उसे सर्वनाश की ओर ले गया, उसे ईश्वर विमुखी राक्षस योनि की प्राप्ति करा बैठा।

कपटी मुनि के उपदेश पर चलकर प्रताप भानु सोचता था वह इस नश्वर शरीर को अमर बना सकेगा।

हरषेउ राउ वचन सुनि तासू।
नाथ न होइ मोर अब नासू॥
तव प्रसाद प्रभु कृपा निधाना।
मो कहुँ सर्व काल कल्याना॥

राजा सोचता था कि कपट मुनि का उपदेश न मानने से उसका सर्वनाश हो जाएगा। 'जौ न चलब हम कहे तुम्हारें। होउ नास नहिं सोच हमारे॥' किन्तु हुआ इसके विपरीत। कपटी मुनि के उपदेशानुसार आचरण कर राजा ब्राह्मणों के कोप का भाजन हुआ और ब्राह्मणों ने उसे शाप दे दिया।

बोले विप्र सकोप तव नहिं कछु कीन्ह बिचार।
जाइ निसाचर होहु नृप मूढ़ सहित परिवार॥

कपटी मुनि और कालकेतु की कुचाल से कृत्रिम आकाशवाणी द्वारा कपटी मुनि ने ब्राह्मणों को राजा के विरुद्ध यह कहकर कुपित कर दिया कि उनके भोजन में राजा ने ब्राह्मणों का माँस परोसा है। इसीलिए ब्राह्मणों ने कुपित होकर बिना विचारे उसे यह शाप दिया कि मूढ़, राजा प्रताप भानु परिवार सहित राक्षस योनि को प्राप्त हो।

वास्तव में राजा निर्दोष था किन्तु सद्गुरु की खोज करने की क्षमता उसमें नहीं थी। यह क्षमता तो केवल सर्वकामना त्यागी ईश्वर प्रेमी को ही हो सकती है। वह कम से कम इतना अवश्य पहचान लेता है कि कोई विशेष व्यक्ति सद्गुरु नहीं हो सकता। इस विषय में रामचरित मानस का एक और प्रसङ्ग लीजिए।

लक्ष्मणजी को शक्तिबाण लगने पर वैद्यराज सुषेण के कथनानुसार जब बजरंगबली हनुमानजी महाराज संजीवनी बूटी लाने के लिए जा रहे थे तब लंकापति रावण ने कालनेमि से यह सहायता माँगी कि वह जाकर हनुमान जी के इस कार्य में बाधा बने। पहले तो कालनेमि राजी नहीं हुआ। किन्तु जब उसने देखा कि ऐसा न करने से रावण के हाथ मरना होगा तो उसने रामदूत हनुमानजी के हाथों मरने में ही अपना श्रेय समझा। अब कालनेमि पवनपुत्र से भी अधिक गति से चलकर उनसे आगे निकल गये और रास्ते में अपनी माया का जाल बिछा दिया। उसने अपनी माया से एक सरोवर, उसमें मन्दिर और सुन्दर बगीचा बनाया। कालनेमि स्वयं एक मुनि का वेष धारण कर उस मंदिर में विराजमान हो गया। इधर हनुमानजी महाराज को प्यास लगी तो सोचा कि मुनि से पूछकर जल पीकर अपनी थकावट दूर कर लें।

कपटवेषधारी कालनेमि राक्षस ने मूर्खतावश अपनी राक्षसी माया से मायापति भगवान् श्रीराम के परम भक्त और ज्ञानी दूत को मोहित करना चाहा। जैसे ही हनुमानजी महाराज ने उसके पास जाकर मस्तक नवाया कि कालनेमि को यह विश्वास हो गया कि देवाधिदेव महादेव के अवतार हनुमानजी भी उसकी माया से मोहित हो चुके हैं अर्थात् उसे सचमुच मुनि मान लिया है। अब वह यह जताना चाहता था कि वह हनुमानजी के इष्ट भगवान् राम का परम भक्त है। अतः भगवान् श्रीराम के गुणों की गाथा कहने लगा,

होत महा रन रावन रामहिं।
जितिहहिं राम न संसय या महिं॥

अर्थात् राम और रावन में महान युद्ध हो रहा है। राम जीतेंगे इसमें सन्देह नहीं है।

प्रताप भानु की भाँति कपटी मुनि के वाक्यों ने हनुमानजी के मन को तनिक भी प्रभावित नहीं किया। मुनिवेष में कालनेमि ने देखा कि ऐसी वाणी सुनकर भी हनुमानजी चौंके नहीं। उन्हें तो यह आश्चर्य होना चाहिए था कि यह मुनि इतनी दूर बैठे हुए लंका की खबर कैसे जानते हैं। अतः वह स्वयं अपने अंतर्यामी होने की डींग मारने लगा,

इहां भएँ मैं देखेउँ भाई।
ग्यान दृष्टि बल मोहि अधिकाई॥

—हे भाई। मैं यहाँ रहता हुआ ही सब देख रहा हूँ। मुझ ज्ञान दृष्टि का बहुत बड़ा बल है। हनुमानजी ने उसकी बातों को कोई महत्त्व न देते हुए ही उस कपटी मुनि से जल माँगा।

मागा जल तेहिं दीन्ह कमंडल।
कह कपि नहि अघाउं थोरे जल॥

हनुमानजी महाराज के द्वारा जल माँगने पर उसने कमंडलु दे दिया। हनुमानजी महाराज ने कहा, 'थोड़े जल से मुझे तृप्ति नहीं होगी।' मानो वे कह रहे हों कि हे मुनि। तूने मेरे स्वामी को नहीं समझा है। जिस माया से तू मुझे मोहित करना चाहता है वह तो मेरे स्वामी मायाधीश की माया के सामने अत्यन्त तुच्छ है, तू यह नहीं जानता। इसीलिए तू गाने तो चला था श्रीराम के गुण और अपने ही गुण गाने लगा। तूने तो श्रीराम की महिमा को जाना ही नहीं। मैं तेरी इस माया से मोहित होने वाला नहीं क्योंकि यह श्रीराम की माया के सामने उतनी ही तुच्छ है जितना सरोवर के सामने तेरा कमण्डलु।

कपटी मुनि ने अब घोषणा की कि वे सब प्रकार सद्गुरु होने की योग्यता रखते हैं। 'हे हनुमान। मेरी योग्यता तो इतनी है कि मैं ज्ञान में तेरा गुरु होने योग्य हूँ।' अतः

सर मज्जन करि आतुर आवहु।
दिच्छा देउँ ग्यान जेहिं पावहु॥

'हे हनुमान! जाओ शीघ्र सरोवर में स्नान कर आओ तो मैं तुम्हें दीक्षा दे दूँ जिसके द्वारा तुम्हें ज्ञान की प्राप्ति हो।'

हनुमानजी महाराज के तलाब में प्रवेश करते ही एक मगरी ने अकुला कर उसी समय हनुमानजी महाराज के चरण पकड़ लिये। हनुमानजी ने उस मगरी को मार डाला। वास्तव में वह तो मगरी नहीं थी एक अप्सरा थी जो श्रेष्ठ मुनि के शापवश मगरी बनी हुई थी। अब श्रीराम भक्त हनुमानजी के दर्शन स्पर्शन से शाप मुक्त हो गयीं और दिव्य देह धारण कर विमान पर चढ़कर आकाश की ओर चल दी। जाते समय हनुमानजी को चेतावनी दे गयी,

मुनि न होइ यह निसिचर घोरा।
मानहु सत्य बचन कपि मोरा॥

—हे कपि। यह मुनि नहीं है, घोर निसाचर है। मेरा वचन सत्य मानो।

हनुमानजी महाराज अप्सरा के चले जाने पर वहाँ आये जहाँ कपटी गुरु बैठे थे और उन्होंने कहा,

कह कपि मुनि गुरदछिना लेहू।
पाछें हमहि मंत्र तुम्ह देहू॥

'हे गुरुदेव हमें मंत्र बाद में देना पहले गुरु दक्षिना ले लीजिए।'

सिर लंगुर लपेटि पछारा।
निज तनु प्रगटेसि मरती बारा॥

हनुमानजी ने उसके सिर को पूँछ में लपेट कर उसे पछाड़ दिया। मरते समय उसने अपना असली स्वरूप अर्थात् राक्षस रूप प्रकट किया और 'राम राम' कहते हुए प्राण छोड़ दिये।

राजा प्रताप भानु की भाँति यहाँ हनुमानजी महाराज भी जल की खोज में ही कपटी मुनि के सामने उपस्थित हुए थे। अर्थात् ज्ञान पिपासु को उसकी पिपासा मिटाकर तृप्त करने वाला व्यक्ति चाहिए अर्थात् सद्गुरु चाहिए। जीवन में अनेक बार ऐसे व्यक्तियों से साक्षात् होता है जिनकी बुद्धि, बातचीत, जीवन-यापन से त्याग, वैराग्य, ब्रह्म विज्ञानी जैसा आचरण हमें प्रभावित कर यह सोचने के लिए बाध्य करता है कि वे ही सद्गुरु उपस्थित हुए हैं। किन्तु प्रताप भानु की भाँति राज्य प्राप्ति, अनन्त काल तक चक्रवर्ती राजा होने की कामना आदि उसे वह दिव्य दृष्टि नहीं देती जिससे वह सद्गुरु की पहचान कर सके। किन्तु जिसके मन में भगवद प्राप्ति के अतिरिक्त और कोई भी कामना वासना न हो, जो ईश्वर प्रेम और भक्ति में विभोर रहता हो तो ईश्वर कामना और भक्ति के संस्पर्श से उसके हृदय सरोवर में मगरी पाप मुक्त होकर उसे यह बता देती है कि अभी तेरे सद्गुरु नही आये हैं।

सद्गुरु तो खोजने से नहीं मिलते वे अपने आप प्रकट होते हैं। जब शिष्य के मन में ईश्वर प्रेम और व्याकुलता इतनी बढ़ जाती है कि वह ईश्वर के बिना प्राण भी नहीं रखना चाहता तब उसकी आध्यात्मिक पिपासा को शान्त करने सद्गुरु स्वयं प्रगट होते है। तब शिष्य को संशय नहीं रहता। उसे यह पूरा विश्वास हो जाता है कि अब सद्गुरु उसके मोक्ष की इच्छा पूर्ण करने के लिए उपस्थित हो गये हैं।

गुरु का स्वरूप

जो गुरु के बारे में मनुष्य – बुद्धि रखता है उसके साधन-भजन का क्या फल होगा ? गुरु के बारे में मनुष्य—बोध नहीं रखना चाहिए। इष्ट दर्शन होने के पहले शिष्य को प्रथम गुरु के दर्शन होते हैं। फिर ये गुरु ही शिष्य को इष्टदेव के दर्शन करा देते हैं तथा स्वयं धीरे-धीरे उस इष्टरूप में विलीन हो जाते हैं। तब शिष्य गुरु तथा इष्टदेव को अभिन्न, एकरूप देखता है। इस अवस्था में शिष्य जो वर मांगता है, गुरु उसे वही देते हैं। यहाँ तक कि गुरुदेव उसे सर्वोच्च निर्वाण की अवस्था तक दे सकते हैं।.....वह जैसा चाहे गुरु उसके लिए वैसा ही कर देते हैं।

—श्री श्रीरामकृष्ण देव

दुःख और दुःख निवृति

स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम,
वाराणसी

दुःख एक ऐसा शाश्वत सत्य है, जिससे बालक-वृद्ध, धनी-निर्धन, विद्वान-मूर्ख, पण्डित-ज्ञानी सभी का परिचय है। सभी दुःख-निवृति एवं सुख-प्राप्ति चाहते हैं, तथा उसके लिए प्रयत्नशील हैं। लेकिन विचित्र बात तो यह है कि दुःख के विभिन्न कारणों को जानते हुए तथा अनादि काल से उन्हें दूर करने का प्रयत्न करते हुए भी दुःख दूर नहीं होता, बना ही रहता है। अतः अगर हम सचमुच दुःख से छुटकारा पाकर शाश्वत सुख चाहते हैं, तो हमें दुःख का स्वरूप, उसके प्रकार तथा कारणों को अच्छी तरह समझ लेना होगा।

दुःख के प्रकार :

दुःख अनेक प्रकार के हो सकते हैं। परंपरागत रूप से हमारे शास्त्रों में दुःखों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है, जिन्हें त्रिताप कहा जाता है। ये हैं आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक। वर्षा, भूकम्प, सूखा, तूफान, आदि के द्वारा प्राप्त कष्टों को आधिदैविक कहा जाता है। शेर, सर्प, मच्छर, कीट, पतंग, तथा अन्य मानवों द्वारा प्राप्त कष्ट आधि-भौतिक कहलाते हैं। जिन दुःख-कष्टों का कारण हम स्वयं हैं, जो हमसे ही सीधे सम्बन्धित हैं, वे आध्यात्मिक कहलाते हैं। ये भी दो प्रकार के हैं। शारीरिक कष्ट या रोग, व्याधि कहलाते हैं, तथा मानसिक कष्टों को आधि की संज्ञा दी गयी है। इन विभिन्न कष्टों की तीव्रता में भी तारतम्य होता है। हाथ-पैर में दर्द आदि सामान्य सहनीय कष्टों से लेकर कैन्सर की पीड़ा जैसी असहनीय पीड़ाएँ हो सकती हैं। उसी तरह मानसिक कष्टों की भी श्रेणियाँ हैं। छोटी-मोटी सहनीय घटनाएँ प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में होती रहती हैं। लेकिन कभी-कभी ऐसी भी असहनीय परिस्थितियाँ अचानक उपस्थित हो जाती हैं, जो व्यक्ति के लिए असहनीय हों, और उसके सन्तुलन को ही नष्ट कर दें। बौद्ध भिक्षुणी पाकचारा के जीवन की घटनाएँ इसी श्रेणी की हैं। गर्भवती पाकचारा अपने पति तथा पांच वर्ष के पुत्र के साथ अपने पिता के घर की ओर रवाना होती है। जंगल के मार्ग में ही वह एक शिशु को प्रसव करती है। उसका पति वहीं जंगल में सर्प-दंश से मारा जाता है। शोकातुरा पाकचारा अपने दोनों बच्चों को लेकर वेगवती नदी को पार करने का प्रयत्न करती है। उसके नवजात शिशु को तो एक बाज उठा ले जाता है और बड़ा पुत्र नदी में बह जाता है। शोक से विक्षिप्त उसके अपने पिता के घर पहुँचने पर वह उस घर को भी अग्नि से भस्म हुआ पाती है। ऐसी स्थिति में कौन अपना मानसिक संतुलन बनाये रख सकता है? अन्ततोगत्वा भगवान बुद्ध की शरणागत होने पर उसे शान्ति प्राप्त होती है, और वह बौद्ध भिक्षुणी बन जाती है। पाकचारा का जीवन मानसिक कष्ट की चरम सीमा का दृष्टान्त है।

शारीरिक कष्ट :

मानव के दुःख-कष्टों का एक बड़ा भाग शारीरिक कष्टों से सम्बन्धित है। इस सन्दर्भ में यह स्मरणीय है कि व्यक्ति जितना अधिक प्राकृत या असंस्कृत होगा, शारीरिक कष्ट उतना ही अधिक

होगा। सुसंस्कृत मानवों के जीवन में मानसिक संवेदनशीलता की वृद्धि के कारण मानसिक कष्ट अधिक होते हैं। पशु पक्षियों एवं निम्न स्तर के प्राणियों में शारीरिक कष्ट ही प्रमुख रूप से होते हैं। एक कोषाणुयुक्त प्राणी अमीबा से लेकर पूर्ण विकसित मस्तिष्क एवं स्नायुतंत्र युक्त मानव तक के शारीरिक कष्टों का विश्लेषण करने पर दुःख के स्वरूप के विषय में हम बहुत कुछ समझ सकेंगे।

अमीबा में सुख या दुख जैसी कोई चीज नहीं होती। उसमें दो प्रकार की क्रियाएँ होती हैं। यदि वह अपने अनुकूल भोजन सामग्री को निकट पाता है तो उसका शरीर उस ओर अग्रसर होता है। अगर कोई ऐसी वस्तु उसके निकट आती है जो उसके लिए हानिकारक हो तो वह उससे विपरीत दिशा की ओर जाता है। अर्थात् उसमें आकर्षण एवं विकर्षण—ये दो क्रियाएँ होती हैं। ये पूर्ण रूप से स्वाभाविक एवं उसके अस्तित्व को बनाये रखने के लिए आवश्यक क्रियाएँ होती हैं। ज्यों-ज्यों उच्चतर प्राणियों का विकास होता गया, त्यों-त्यों ये दो क्रियाएँ ही अधिकाधिक जटिल होती गयीं। यह बात प्राणिशास्त्र के द्वारा स्पष्ट रूप से समझी जा सकती है। जिन प्राणियों में प्रारम्भिक मौलिक स्नायु तंत्र का विकास हुआ हो, लेकिन जिनमें मस्तिष्क विकसित नहीं हुआ हो, उनमें यही क्रिया स्वचालित क्रिया या Reflex action का रूप ले लेती है। लेकिन इसमें भी पीड़ा या दुःख जैसी कोई चीज नहीं होती। छिपकिली की सद्यः कटी पूँछ तथा बकरे का सिरकटा धड़ छटपटाता है, लेकिन उसमें पीड़ा की संवेदना नहीं रहती। यह केवल स्वचालित क्रिया या Reflex action के कारण होता है।

प्राणियों में मस्तिष्क के विकास के साथ ही सुख पीड़ा आदि का स्पष्ट संवेदन होता, दुख मस्तिष्क युक्त किन्तु Instinct या जन्मजात क्रियाओं द्वारा परिचालित जानवरों जैसे कुत्ते बिल्ली इत्यादि में कष्ट से रोना चिल्लाना, अथवा आनन्द की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से होती है। लेकिन मास्तिष्क युक्त ये निम्न प्राणि अपने शरीर एवं शारीरिक क्रियाओं को स्वयं से भिन्न नहीं समझते। अतः कुछ हद तथा विचार करने पर हम उनके सुख-दुःख की अभिव्यक्ति के कार्यों को अमीबा के आकर्षण एवं विकर्षण की दो श्रेणियों में ही डाल सकते हैं। मानव में एक विशेषता यह है कि वह अपने शरीर एवं शारीरिक क्रियाओं से स्वयं को पृथक देख सकता है। उसमें देह से पृथक एक स्वतंत्र साक्षी चेतना का विकास हुआ है, अतः वह सुख और दुःख को स्पष्ट रूप से, स्वतंत्र सत्ताओं के रूप में अनुभव कर सकता है।

मानासिक दुःख—

उपर्युक्त विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि शारीरिक पीड़ा मुख्यतः देह की एक स्वाभाविक, प्राकृतिक प्रक्रिया का ही अंग है, जो प्रकृति ने प्राणी के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए उसकी देह एवं स्नायु-तंत्र के साथ मानों जोड़ दी है।

इसे और स्पष्ट रूप से समझने के लिए एक ऐसे बालक का दृष्टान्त लें जो जन्म से ही अन्धा है तथा जिसने नेत्रों द्वारा कभी बाह्य जगत को नहीं देखा। उसका संसार बिलकुल भिन्न ही होगा। वह अपनी असुविधाओं अथवा सीमाओं को दूसरों के साथ तुलना करके ही समझ सकेगा, स्वयं के अनुभव से नहीं। उसका शरीर तथा अन्य इन्द्रियाँ अत्यन्त पटु होंगी तथा वे उसके एक अंग की कमी को पूरी कर देंगी। एक दूसरा उदाहरण लें, ऐसे एक बालक का जो जन्म से ही श्वास के कष्ट से पीड़ित है। उसके लिए यह असुविधा स्वाभाविक होगी और उसका शरीर और मन उसके अनुरूप अपने को बना लेगा। तथा वह उसके लिए दुःख नहीं रह जायेगा। एक तीसरा दृष्टान्त लें। एक बालक अगांव में जन्मा तथा झोपड़ीमें पला। लाल-

टेन की रोशनी में पढ़ना, बिना जूते-चप्पलों के चलना उसके लिए स्वाभाविक है। जमीन पर चटाई बिछा कर या खटिया पर सोने पर उसे किसी प्रकार की दुःख की अनुभूति नहीं होती। लेकिन कुछ दिनों के लिए वह शहर में आता है। वहाँ की चकाचौंध, बिजली की रोशनी, पंखा, रेडियो, नरम रुईदार गद्दों पर सोना, आदि देख कर वह अपने को अभाव ग्रस्त समझने लगता है। लौटकर जाने पर वही गाँव का स्वाभाविक परिवेश उसे कष्ट प्रद प्रतीत होने लगता है। अभाव का बोध मानसिक कष्ट का एक महत्वपूर्ण कारण है। इससे यह भी स्पष्ट है कि सुख और दुःख बहुत हद तक हमारी परिस्थितियों को झेलने की क्षमता तथा उनके अनुरूप अपने को गढ़ लेने की क्षमता पर निर्भर करते हैं। बालकों के लचीले शरीर व मन बड़ी आसानी से परिस्थितियों के अनुरूप अपने को गढ़ लेते हैं। छोटा बालक रुग्णावस्था में भी खेलता है। पैर की हड्डी-विशेष के टूट जाने पर छोटे बच्चों को दोनों पैरों से आधा उल्टा टांग दिया जाता है ऐसी स्थिति में भी ये बच्चे उल्टे टंगे-टंगे खिलौनों से खेलते रहते हैं।

मानसिक कष्ट का एक बड़ा कारण भविष्य की चिन्ता या भय तथा भूतकाल में की गयी गलतियों की अनुशोचना से सम्बन्धित रहता है। यह एक निर्विवाद सत्य है कि भविष्य एवं भूत का यथार्थतः अस्तित्व न होते हुए भी हम में से अधिकांश लोग भूत व भविष्य में ही जीते हैं। वर्तमान में नहीं। जीवन में सभी से गलतियाँ होती हैं, लेकिन हम उनकी व्यर्थ में चिन्ता कर वर्तमान में दुःखी होते हैं। इसका एक बड़ा ही मजेदार उदाहरण है। एक वृद्धा अपने जवान पुत्र के साथ रेल में यात्रा कर रही थी। रेल में भीड़ के कारण युवक दो बेंचों के बीच के स्थान में ही सो रहा था। अचानक सबसे ऊपर रखा किसी का कद्दू (कुम्हणा) नीचे गिर पड़ा लेकिन युवक बाल-बाल बच गया। सभी ने राहत की सांस ली कि चलो, कोई दुर्घटना नहीं हुई। लेकिन युवक की वृद्धा माता रोने लगी और बाकी बची सारी यात्रा भर रोती रही कि यदि वह कुम्हड़ा उसके बेटे पर गिर जाता तो क्या होता।

गीता में वर्णित अर्जुन का विषाद भविष्यत् शोक का दृष्टान्त है। युद्ध में सगे सम्बन्धी मरेंगे, कुल नष्ट होगा तथा कुल धर्म नष्ट हो जायेगा इत्यादि। उपनिषदों में भी प्रसंगतः कहा गया है कि ब्रह्मवित् पुरुष यह "अरे! मैंने वह पापकर्म क्यों किया, अमुक पुण्य कर्म क्यों नहीं किया, आदि कहकर भूतकाल के लिये अनुशोचना नहीं करता। 'किमहं नाकरव किमहं पापम् करवमिति"। (तैत्तिरीयोपनिषद)।

भविष्यत् दुःख प्रायः भय का रूप लेता है। किसी न किसी रूप में यह भय सभी के साथ लगा रहता है। भोग के साथ रोग का भय है, उच्च कुल के व्यक्ति को कुलच्युत होने का भय है, धन के साथ चोरों का भय है। इस तरह सभी वस्तुओं के साथ भय रूपी दुःख लगा ही हुआ है।

भोगे रोगभयं कुलेच्युतिभयं वित्तेनृपालाद्भयं।
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्॥
शास्त्रे वादिभयं गुणेखल भयं काले कृतान्तात्भयम्।
सर्व भयान्वित भुवि नृणांवैराग्य मेवाऽभयम्॥
—वैराग्यशतकम्

मानसिक दुख, बालक, वृद्ध, धनी, निर्धन सभी को होता है। जैसा कि कहा जा चुका है अति प्रकृत व्यक्ति तथा बालकों में शारीरिक दुःख ही प्रमुख होता है, लेकिन माता-पिता से बिछुड़ने, खिलौने के छिन जाने आदि से मानसिक दुःख भी होते हैं। वृद्ध तो सामान्यतः चिन्ता में ही डूबे रहते हैं, तथा उनके जीवन में दुःख की मात्रा ही अधिक होती है। मानसिक विकास एवं सुसंस्कृत होने के साथ साथ मानसिक दुखों की मात्रा में वृद्धि होती है। उदाहरण के लिए संगीत को ही ले लें।

संगीत न जानने वाले व्यक्ति को बेसुरे या सुरीले गीत का अन्तर समझ में नहीं आयेगा, लेकिन एक संगीतज्ञ को गीत के जरा भी बेसुरे होने पर तीव्र पीड़ा का अनुभव होगा। नैतिक विकास, स्वाधीनता बोध, मानव मूल्यों का बोध आदि के कारण भी दुःख कष्ट के प्रकार व तीव्रता में परिवर्तन होता है। उच्च नैतिक आदर्शों का पोषण करने वाले व्यक्ति को अपने चरित्र अथवा आचरण को जाने अनजाने किया गया छोटा सा भी अनैतिक कार्य अत्यधिक पीड़ा प्रदान करता है, जबकि वही कार्य अन्य किसी व्यक्ति में किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न न करता। स्वाधीनताप्रेमी व्यक्ति अन्य सभी प्रकार के कष्ट सहन कर सकता है, लेकिन वह पराधीन होना स्वीकार नहीं करेगा। उसे पराधीनता में प्रदान की गयी सुख-सुविधाएं मान्य नहीं होंगी बल्कि पीड़ादायक ही होंगी। व्यक्ति जितना अधिक आदर्शवादी होगा, जितना अधिक भावुक और प्रेमी होगा, उतना अधिक कष्ट उसके जीवन में होगा। स्वामी विवेकानन्द तो यहाँ तक कहते हैं कि कष्ट विश्व के श्रेष्ठतम एवं महानतम् लोगों के जीवन का अनिवार्य अंग है। Suffering is the lot of the world's best and the bravest.

योगी, सिद्ध महापुरुष एवं अवतारों के जीवन भी दुःख एवं कष्ट से रहित नहीं होते। उनके जीवन में भी दुःख होता है। योगियों के अनुसार तो सभी दुःखमय है। सामान्यतः सुख प्राप्ति कहलाने या प्रतीत होने वाली बातें भी उनके लिए कष्टप्रद ही होती हैं।

परिणाम = ताप-संस्कार-गुण वृत्ति विरोधात्-
सर्वमेव दुःखं विवेकिनाम्"

अर्थात् परिणाम में दुःखमय होने के कारण, सुखानुभव से सुख के संस्कार एवं वासना के निर्माण के कारण, एवं बुद्धि वृत्तियों के त्रिगुणात्मक होने के कारण उनमें परस्पर विरोध के कारण स्थायी सुख कभी सम्भव नहीं है। योगियों के अनुसार सभी इन चार कारणों से दुःख ही है।

महापुरुषों के जीवन का अवलोकन करने पर भी हमें उनके जीवनमें सुख से अधिक दुःख-ही-दुःख दिखाई देता है। राम और विशेषकर सीता का तो सारा जीवन दुःख में ही बीता। ईसा मसीह को तो सूली पर चढ़ा दिया गया। श्रीरामकृष्ण को कष्टदायक कैन्सर हो गया था; और स्वामी विवेकानन्द का तो सारा जीवन नाना प्रकार के दुःख से पूर्ण ही था।

सामाजिक विषमताएँ :

उपर्युक्त वर्णित शारीरिक व मानसिक दुःखों के अतिरिक्त मानव समाज, दुर्भाग्य से इस प्रकार गठित हुआ है, उसमें कई ऐसी विषमताएँ हैं, जो मानव जीवन में दुःख को बनाये रखती हैं। मानव का इतिहास असमानताओं, युद्धों एवं उत्पीड़नों का इतिहास ही रहा है। मानव के जीवन की तीन ऐसी अनिवार्य परिस्थितियाँ हैं, जिनपर वह कभी विजय नहीं प्राप्त कर सकता। वे हैं (१) असमर्थता (२) अनिश्चितता (३) आवश्यक वस्तुओं की अपर्याप्तता। मानव मृत्यु के सामने असमर्थ है। विज्ञान के कल्पनातीत विस्तार के बावजूद मानव की अपनी शक्ति की सीमाएँ बनी ही हुई है। दूसरा महान दुखदायी सत्य है, भविष्य की अनिश्चितता, जो मानव को सदा शंकित रखती है। और तीसरी अप्रिय परिस्थिति मानव के सुखी जीवन के लिए प्राप्त सामग्री का असन्तुलित वितरण अथवा वास्तविक अभाव, जो सदा सभी कालों में बना रहा है, और बना रहेगा।

इस तरह मानव सदा ही अनेक प्रकार के दुःखों से घिरा हुआ है। पाठक का स्वयं का, प्रतिदिन, किसी न किसी प्रकार के दुःख से सामना होता होगा, और वह स्वयं ऊपर वर्णित दुःख कष्टों की सूची में कुछ जोड़ घटा सकता है। अतः इस वर्णन का यहीं अन्त करके दुःख निवृत्ति के उपायों की ओर दृष्टि डाली जाय।

दुःख-निवृति

मानव अनादि काल से दुःखों से छुटकारा पाने का प्रयत्न करता रहा है। दुःख जितने अनिवार्य हैं, उनको दूर करने के प्रयत्न भी उतने स्वाभाविक हैं। आबाल वृद्ध वनिता सभी दुःखों से मुक्ति तथा सुख प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं। एक ओर तो जहाँ सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति दुःख दूर करने का प्रयत्न करता है, वहीं दूसरी ओर दुःख और उसकी निवृत्ति ने विशिष्ट दार्शनिक मतवादों का भी रूप ले लिया है।

(१) चार्वाक मत :

चार्वाक अथवा जड़वादियों का कथन है दुःख भले ही हो, पर जीवन में थोड़ा बहुत सुख भी तो है। उसी सुख को वर्तमान में भोगो और भूत भविष्य की चिन्ता छोड़ दो। चार्वाक, विशेषतः इन्द्रिय सुख भोग को ही महत्व देते हैं। चार्वाकों के विषय में निम्न श्लोक प्रसिद्ध हैं :

यावज्जीवेत सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः॥

अर्थात् जब तक जियो सुख से जीयो। (यदि आवश्यक हो तो) ऋण लेकर भी घी पियो। (मृत्यूपरान्त) देह के जल कर भस्म हो जाने के बाद पुनरागमन कहाँ होने वाला है। (कि ऋण चुकाने आना पड़े।)

इस तरह चार्वाक मत दुःख को पूरी तरह नकारने का, जीवन के इस कटु सत्य को अनदेखा करने का प्रयत्न करता है।

(२) निराशावाद :

चार्वाक मत का बिल्कुल विपरीत मत है निराशावाद। पाश्चात् दार्शनिक शोपन हावर इसके विशिष्ट प्रणेता है। इनके अनुसार दुःख और कष्ट से युक्त यह जीवन जीने के योग्य नहीं है। मानव विभिन्न प्रकार की अन्ध और अर्थहीन इच्छाओं के द्वारा जो परस्पर संघर्षरत रहती है, निरन्तर कष्ट पाता रहता है। एक इच्छापूर्ण होती है तो दूसरी पैदा हो जाती है, इस तरह हम कभी स्थायी रूप से संतुष्ट नहीं हो पाते। दूसरी ओर मृत्यु ग्रास बनाने के लिए सदा तैयार खड़ी रहती है और हमारे किसी भी क्षण बन्द हो जाने वाला श्वास प्रश्वास उसे हमसे दूर रखता है। भोजन निद्रा द्वारा हम इस मृत्यु रूपी काल से किसी तरह अपने को बचाये रखते हैं। जन्म के साथ ही साथ मृत्यु हमारे पीछे लगी रहती है। और हम उससे चाहे बचने का कितना ही प्रयत्न करें, अन्त में वह हमारा गला दबोच ही लेती है। जीवन एक पानी के बुदबुदे के समान है, जो चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो क्षण भर में फूट सकता है। अगर वासना और इच्छाएँ जो दुःख का कारण हैं, संतुष्ट हों जाएँ तो मानसिक अकर्मण्यता, अथवा स्त्यान आ जायेगा। इस तरह जीवन दुःख और अकर्मण्यता मात्र ही है।

जीवन इसलिए भी बुरा है कि वह स्वार्थपूर्ण और हीन है। एक मछली दूसरी मछली को खाती है, एक प्राणी दूसरे को खाकर या मारकर जीवित रहता है, मानव मानव का शोषण करके बढ़ता है। मानव का इतिहास हत्याओं, लूट-खसोट और झूठ से भरा पड़ा है। शोपन हॉवर के अनुसार ज्ञान व सभ्यता से कोई अन्तर नहीं पड़ता। क्योंकि नये ज्ञान के साथ नयी आवश्यकताएँ, नये प्रकार की अनैतिकताएँ एवं नये स्वार्थों का जन्म होता है। In much wisdom there is much grief and he that increaseth knowledge increaseth sorrow." अर्थात् अधिक ज्ञान में अधिक दुःख है। तथा जिसका ज्ञान बढ़ता है उसका दुःख भी बढ़ता जाता है। शोपन हॉवर का दर्शन दुख की सत्यता के विषय में बौद्ध दर्शन से मिलता जुलता है लेकिन वे बुद्ध की तरह दुःख निवृत्ति का विस्तृत उपाय नहीं बताते। उनके अनुसार दुःख अगर न हो तो मानव

की अनियमितताओं मूर्खताओं और गलतियों पर अंकुश ही न रहे।

३—एक अन्य मतवाद दुःख को इतनी भयावह दृष्टि से नहीं देखता। उसके अनुसार दुःख ही जीवन है, जोवन की जीवन्तता दुःख से ही प्रकट होती है। बालक का क्रन्दन ही यह बताता है कि वह जीवित है। दुःख जीवन के विकास का मूल व अस्तित्व की पहचान है। जहाँ दुःख नहीं, वहाँ जोवन नहीं। दुःख असीम के प्रति, उसकी प्राप्ति के लिए ससीम का क्रन्दन है। आत्मा का परमात्मा के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में दुःख की ही मुख्य भूमिका है। दुःख ही सृष्टि का मधुमय वरदान है, क्योंकि इससे उसके कारण, दोष को दूर किया जा सकता है। दुःख से स्वानुभूति होती है, जो सहानुभूति और अन्त में सर्वानुभूति को जन्म देती है। अतः दुःख से घबराने के बदले उसका स्वागत एवं सदुपयोग करना चाहिए।

४ बौद्ध मत :—

भगवान् बुद्ध के उपदेश तो दुःख की सत्यता और उसको दूर करने के उपाय पर ही आधारित हैं। उनके अनुसार जरा रोग, मृत्यु सभी दुःख हैं। इन दुःखों का कारण खोजते हुए उन्होंने कार्य कारण की एक शृंखला खोज निकाली जिसे प्रतीत्य-समुत्पाद कहते हैं। वासना या तृष्णा ही दुःख का कारण है, तथा इसके भी मूल में है अज्ञान। बुद्ध ने दुःख निवृति के लिए एक स्पष्ट साधना पद्धति जिसे अष्टांग मार्ग कहा जाता है, बतायी।

(५) स्टोएसिज्म :—

यह आशावादी पाश्चात्य दार्शनिक मत दुःख को बुरा नहीं मानता तथा उसकी उपेक्षा करने की, तथा उससे अविचलित रहने की सलाह देता है। इस मत के अनुसार यह जगत शुभ व पूर्ण है तथा जिसे हम दुःख, अशुभ या बुरा कहते हैं, वह केवल सापेक्षिक रूप से हीन शुभ है। जिस प्रकार चित्र में छाया उसके सौन्दर्य की वृद्धि करती है उसी प्रकार दुःख भी जगत रूपी चित्र के सौन्दर्य को बढ़ाता है। व्यापक दृष्टि, व्यापक परिप्रेक्ष्य में तो जगत सुन्दर व शुभ ही है तथा उसमें सभी वस्तुएँ अपने निर्दिष्ट स्थान पर हैं। उसका कोई भी अंश बुरा या अशुभ नहीं है। दुःख प्राकृतिक क्रियाओं का अनिवार्य परिणाम है जो शुभ की प्राप्ति में अनिवार्य रूप से पैदा होती है, जैसे अमृत प्राप्ति के लिए किये गये समुद्र मंथन की प्रक्रिया के प्रारंभ में विष पैदा होता है। दुःख अपने आप में बुरा नहीं हैं, क्योंकि उसका चरित्र व मूल्यों से न कोई सम्बन्ध है, और नहीं वह उन्हें प्रभावित ही करता है। यही नहीं वह सद्गुणों के विकासमें भी सहायक होता है, क्योंकि कष्ट एवं दुर्गुणों को दूर करने से ही सद्गुण प्रकाशित होता है। अतः भौतिक एवं सद्जीवन व्यतीत करना ही दुःख की समस्या का, सुख की प्राप्ति का उपाय है। हमें प्रकृति के विधान के अनुसार जीने का प्रयास करना चाहिए।

(६) ईसाई धर्म के प्रणेता ईसा मसीह का समग्र जीवन दुःख एवं संघर्ष में ही बीता। उनका अन्त भी अत्यन्त कष्ट प्रद था। उनके जीवन एवं उपदेशों के आधार पर अनेक मतवादों एवं सिद्धान्तों का उद्भव हुआ है।

(अ) ईसा मसीह दुःख से पूरी तरह परिचित थे, लेकिन उन्होंने इसकी दार्शनिक अथवा सैद्धान्तिक व्याख्या करने का प्रयत्न नहीं किया, बल्कि करुणा विगलित हो उसे दूर करने के प्रयत्न में लग गये। अतः प्रेम करुणा सहानुभूति और त्याग द्वारा दुःख कष्ट को मानव जीवन से दूर करने के लिए संघर्ष करना चाहिए। इस संघर्ष में ईश दूत ईसा हमारे सेनापति की तरह हैं। लेकिन वे हमारी सहायता की अपेक्षा रखते हैं। वे अकेले अशुभ पर विजय नहीं प्राप्त कर सकते। प्रत्येक रोगी जो रोग मुक्त

हुआ हैं, प्रत्येक पीड़ित जो पीड़ा मुक्त हुआ है, तथा जितना दुःख दूर हुआ है, उतना ही हम लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं और एक समय ऐसा आयेगा जब दुःख पूरी तरह दूर हो जायेगा, जो चरम लक्ष्य है।

(ब) ईसा ने परमात्मा के साथ संयुक्त होकर, परमात्मा के प्रेम में प्रतिष्ठित होकर जीवन की समस्याओं का सामना किया। उसी तरह परमात्मा के प्रेम में प्रतिष्ठित होकर दुःख का सामना करो।

(स) Imitation of Christ या ईसानुसरण नामक प्रसिद्ध पुस्तक में भी इस विषय में ईसा के जीवन में दुःख को अनुकरणीय दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहा है कि दुःख-कष्ट को सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। जो ईसा को प्रेम करते हैं, उनके लिए कष्ट अत्यन्त प्रिय होते हैं, क्योंकि उन्हें ईसा ने सहन किये थे। उसी में सुख, मुक्ति, जीवन और माधुर्य है। कष्ट सहन करना हमें अपने प्रियतम के अनुरूप बनाता है।

(द) ईसाई धर्म सिद्धान्त के अनुसार दुःख पाप के कारण प्राप्त होते हैं। भगवान से विमुख होना Original Sin या आदि-पाप कहलाता है। दुःख एक नैतिक अनुशासन या दंड विधान की तरह है, जो हमारे कल्याण के लिए है। अतः उसे बुरा न समझो, भगवान के साथ पुनः युक्त हो जाओ तो सब ठीक हो जायेगा। दुःख से घबराना नहीं चाहिए, क्योंकि दुख में ईसा सदा तुम्हारे साथ हैं। वे सदा तुम्हारा कष्ट सहन करने के लिए, तुम्हारा साथ देने के लिए तत्पर है।

भारतीय दर्शन के समाधान :—

भारत में भी अनादिकाल से इस विषय में मनीषियों का गहन चिन्तन चलता रहा है। भारतीय दर्शन को सामान्यतया निराशावादी माना जाता है क्योंकि वह जगत को मूलतः दुःख मय, अविद्या प्रसूत बन्धन आदि का कारण मानता है। यह भारतीय चिन्तन का मूल होते हुए भी इसका एक आशावादी सकारात्मक पक्ष भी है। दुःख का कारण बताते हुए भारतीय ऋषि कहते हैं कि जीवन सामान्यतः इतनी लापरवाही के साथ विना सोचे विचारे जिया जाता है, तथा मानव अपने को असंख्य वासनाओं के हाथ एक कठपुतली की तरह इस तरह नचवाते रहता है कि उसका परिणाम दुःख के अतिरिक्त हो ही क्या सकता है!

भारतीय दार्शनिक सदा एक शाश्वत, नैतिक नियम या विधान जिसे ऋत् कहा गया है, में सदा विश्वास करते रहे हैं। इसे ही मीमांसक अपूर्व, नैयायिक अदृष्ट एवं वेदान्ती कर्म का सिद्धान्त कहते हैं। मानव अपने शुभाशुभ कर्मों का सुख अथवा दुःख के रूप में फल पाता है। भारत में भी जड़वादी चार्वाक हुए हैं, जो दुःख की उपेक्षा करके इस जीवन में थोड़ा बहुत जो भी सुख है, उसे भोगने में विश्वास करते थे। लेकिन मीमांसकों का मत है कि इस जन्म में शुभ कर्म करने पर स्वर्ग सुख की प्राप्ति की जा सकती है। पातंजल योग सूत्र के अनुसार अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच क्लेश दुःख के कारण हैं। योगियों के अनुसार दुःख तीन प्रकार के होते हैं, गत या भूतकालीय, आगत या वर्तमान तथा अनागत, आगामी अर्थात् भविष्यत् सामान्यतः लोग तीनों द्वारा कष्ट पातें हैं। लेकिन योग मत कहता है कि वर्तमान दुःख तो भोगना पड़ेगा, लेकिन जो अनागत है उसे नष्ट किया जा सकता है। हेयं दुख अनागतम्।" और इसे दूर करने का उपाय है अष्टांग योग। कुछ लोगों की ऐसी मान्यता है योग दुःख के कारण की जड़ तक नहीं जाता केवल चित्त वृत्ति निरोध द्वारा मन द्वारा हो रही दुःख रूप प्रक्रिया को दबा देता है। लेकिन ऐसी बात नहीं है। अविप्लवा विवेक ख्याति द्वारा योगी आत्यन्तिक दुःख की निवृति कर पंचक्लेशों की मूला अविद्या को नष्ट करता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में दुःख की समस्या का विशद विवेचन है। वहाँ श्रीकृष्ण सुख और दुःख में समान रहने का आदेश देते हैं। इस समत्व के विभिन्न उपाय बताये गये हैं; यथा अहंकार का, कर्तृत्व भोक्तृत्व का त्याग, कर्म करना लेकिन उनका सुख-दुःख रूप फल स्वीकार न करना, निर्लिप्त बने रहना इत्यादि। दुःख सुख से पृथक नहीं देखा गया है, तथा दोनों से निवृत्ति का सुझाव दिया गया है मात्र दुःख से नहीं।

यही बात, एक भिन्न प्रकार से भक्ति-शास्त्र में भी स्वीकार की गयी है। भक्त अपने सुख-दुःख भगवान से जोड़ देता है। भगवान सुख देते हैं तो उसे वह सहर्ष स्वीकार कर लेता है और यदि दुःख प्राप्त हो तो उन्हें भी भगवान की देन अथवा कृपा मानकर स्वीकार कर लेता है। जो माता दूध पिलाती है, वही चाँटा भी मारती है। अतः भक्त वस्तु, कार्य अथवा व्यक्ति को नहीं बल्कि सभी में अपने प्रियतम भगवान को देखता है। प्रेम दुःख सहन करने की महान शक्ति प्रदान करता है। एक माता, अपनी सन्तान के लिए न जाने कितने कष्ट सहन करती है। लेकिन वे उसे कष्ट प्रतीत नहीं होते। इसी तरह भगवान रूपी प्रियतम के लिए कष्ट सहने में भक्त को परम आनन्द एवं सन्तोष की अनुभूति होती है। उसे वह कष्ट नहीं लगता।

उपनिषदों में भी सुख की समस्या का विभिन्न स्थानों पर विशद विश्लेषण है। छान्दोग्योपनिषद में नारद सनत्कुमार के पास जाकर शोक निवृत्ति की ही प्रार्थना करते हैं। मैत्रेयी भी अपने पति याज्ञवल्क्य के आसन्न संन्यास से दुखी होकर तत्व विषय के प्रश्न करती है। उपनिषद् स्पष्ट रूप से निर्घोष करते हैं: "यो वै भूमा तत्सुखंनाल्पे सुखमस्ति।" द्वितीया द्वै भयं भवति।" अर्थात जो भूमा (सर्वव्यापी) है, वही सुख (दायक) है। अल्प में सुख संभव नहीं है"। जहाँ दो है वहीं दुःख है। अतः उपनिषदों में एकत्व दर्शन अथवा अद्वैत स्थिति की प्राप्ति को ही आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति का उपाय बताया है।

यथा, तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनु पश्यतः॥

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानां
एको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः
तेषां सुखं शाश्वतं ने तरेषाम्॥

जो सर्वत्र अपने अव्यक्त रूप एकत्व का ज्ञान-नेत्र से अवलोकन करता है, उसके लिए शोक अथवा मोह नहीं होता। जो असंख्य अनित्य वस्तुओं के बीच एक नित्य वस्तु को आत्मामें स्थित देखता है, उसे ही शाश्वत् शान्ति एवं सुख प्राप्त होता है, और किसी को नहीं। लेकिन सभी शास्त्रों ने वासनाओं, कामनाओं और आसक्तियों के त्याग की आवश्यकता को सुख के लिए आवश्यक बताया है।

"विहाय कामान्यः सर्वान् पुमान् चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥

अपने स्वरूप में स्थित त्रिगुणातीत ज्ञानी सुख दुःख दोनों का निष्पक्ष साक्षी होता है। गंगा में जिस प्रकार पुष्प भी बहते हैं, मुर्दा भी बहता जाता है लेकिन हम निष्पक्ष रूप से तट पर खड़े रहकर उन्हें देखते रहते हैं। उसी प्रकार ज्ञानी अपने शरीर को अपने आत्मस्वरूप से पृथक् देखता हुआ उसमें हो रहे सुख दुखादि को निष्पक्ष भाव से साक्षी भाव से देखता रहता है। सुख और शोक के तो सहस्रों कारण हैं, उनसे मूर्ख ही पीड़ित होते हैं, ज्ञानी नहीं।

शोकस्थान सहस्रानि भयस्थान शतानि च।
दिवसे दिवसे मूढ़माविशन्ति न पण्डितम्॥

जैन धर्म के अनुसार मनुष्य के सुख दुःख शुभाशुभ कर्म के कारण हैं। पूर्व कृत अशुभ अथवा

पाप के कारण ही हम कष्ट भोगते है। अतः दुःख से छुटकारा पाने का उपाय है नये अशुभ कर्म न करना और पुरानें कर्मों के फलों से छुटकारा पाने के लिए तपस्या करना। कर्म संचय को रोकना संवर कहलाता है। तप द्वारा अशुभ को नष्ट करना निर्जरा कहलाता है। तप एक प्रकार का स्वेच्छा से कष्ट सहन करना ही है। अनिच्छा से कष्ट सहना दुखदायी होता है लेकिन जब हम स्वेच्छा-पूर्वक कष्ट सहते हैं तो वही मुक्ति का कारण बन जाता है। दुख-सुख के लिए किसी को दोष नहीं देना चाहिए। उसके लिए हम स्वयं ही उत्तर-दायी है।

दुःखस्य सुखस्य न कोऽपिदाता
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमिति वृथाभिमानः
स्वकर्म सूत्रेण ग्रथितो हिलोकः॥

महापुरुषों का आदर्श—

महापुरुषों, विशेषकर अवतारों का मुख्य उद्देश्य स्वयं दुःख-कष्ट सहकर अन्य लोगों को यह बताना होता है कि किस तरह दुःख सहन किया जाता है। यहीं नहीं एक मान्यता के अनुसार अवतारी महा-पुरुष स्वयं कष्ट सहकर दूसरों के कष्ट को लाघव कर देते हैं। उन्हें दूसरे दुर्बल मानवों के दुःख एवं कष्ट को खींचकर अपने शरीर पर ले लेने की असाधारण क्षमता रहती है। ईसामसीह का दृष्टान्त हम पहले देख चुके हैं। उनके अनुयायी यह विश्वास करते हैं कि ईसा ने जो कष्ट सहे, वे मात्र उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए नहीं सहे, बल्कि दुर्बल मानव के कष्टों को लाघव करने के लिए उन्हें स्वयं अपने शरीर में खीच लिये थे। बुद्ध ने कठोर तपस्या के द्वारा निर्वाण प्राप्त कर दुख निवृत्ति का एक सर्व-जन सुलभ मार्ग खोज निकाला था। श्री रामचन्द्र का जीवन दुख की समस्या एवं सामाजिक समस्या प्रसूत विषम परिस्थितियों के समाधान का एक अति सुन्दर दृष्टांत है। असमर्थता, अपर्याप्तता एवं अनिश्चिततारूपी मानव समाज की तीन अनिवार्य परिस्थितियाँ अयोध्या के इति-हास में स्पष्ट रूप से प्रकट हुई थीं। राज सिंहासन एक है, भाई चार है। किसे दिया जाय? यह अपर्याप्तता का दृष्टान्त है। महाराज दशरथ ने ग्रह नक्षत्रादि की गणना करवाने के बाद दूसरे दिन प्रात काल राम को राज्यपद सौपने का निर्णय किया, लेकिन दूसरे दिन राम को राज्य के स्थान पर वनगमन करना पड़ा। जीवन की अनिश्चितता का इससे बड़ा और कौन सा दृष्टान्त हो सकता है। कैकेयी को दिये गये अपने दो वचनों को निभाने में तथा उससे उत्पन्न विषम परिस्थिति को सुलझाने में महाराज दशरथ की असमर्थता एवं असहायता मानव की तीसरी अनिवार्य स्थिति को प्रदर्शित करती हैं।

रामायण के विभिन्न आदर्श पात्रों ने जिस प्रकार भिन्न भिन्न रूप से इन समस्यायों का सामना किया वह अपने आप में अनुकरणीय है। राम वन गमन के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार करते हैं तथा एक मात्र राज सिंहासन को अपने प्रिय अनुज भरत को दे देना चाहते हैं। दूसरी ओर भरत राम के प्रतिनिधि होकर कर्त्तव्य पालन के रूप में राज्य का शासन भार स्वीकार करते हुए भी राज्य पद स्वीकार नहीं करते। त्याग और प्रेम द्वारा ही समस्या का समाधान निकाला गया। यही बात सीता व लक्ष्मण में भी है। कौशल्या तथा माता सुमित्रा परिस्थिति की अपरिहार्यता को समझकर उसके अनुरूप आचरण करती है। सभी के लिए त्याग प्रेम एवं उच्च नैतिकता, वे आदर्श मूल्य थे, जिनकी सहायता से उन्होंने दुःख को सहन किया।

स्वामी विवेकानन्द का समग्र जीवन कष्ट में बीता था। वे दुःख निवृत्ति के बारे में क्या कहते हैं? उनका कथन है कि सुख और दुःख दोनों समान रूप से सत्य हैं। सुख, दुःख का मुकुट पहनकर

मानव के पास आता है। अतः इन दोनों में परमात्मा को देखने का प्रत्यत्न करना चाहिए।" Learn to recognise Mother as instinctively in evil, as in good." द्वितीयतः दुःख एक महान शिक्षक है। सुख की तुलना में दुःख से अधिक शिक्षा मिलती है। यह संसार रूपी स्वप्न को भंग करने में हमारा महान सहायक होता है। स्वयं दूसरों के दुःख को समझने और दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। हममें दुःखी लोगों के प्रति सहानुभूति होनी चाहिए, अपनी प्रसिद्ध कविता " माँ काली" में तो वे दुःख को प्रेम करने, सहर्ष स्वीकार करने का ओजस्वी आह्वान करते है।

चाहता जो दुःख, मिल जाता मरण से।
नाश की गति नाचता, माँ उसी के पास आती॥

स्वामी विवेकानन्द तो चाहते थे कि उन्हें बार-बार जन्म लेना पड़े, और असंख्य यातनाएँ सहनी पड़ें, जिससे वे गरीब, पीड़ित, दुखी मानवों की सेवा कर सकें।

श्रीरामकृष्ण ने अपने जीवन में कष्ट सहकर दुःख निवृत्ति का मार्ग बताया है। भक्त लोग ऐसा मानते हैं कि श्रीरामकृष्ण के गले का कैन्सर, भक्तों के विशेषकर गिरीशचन्द्र घोष के पापों को स्वीकार करने के कारण हुआ था। इस अन्तिम एवं कष्ट प्रद बीमारी के समय भी वे सदा आनन्द में रहते थे। कुछ भक्तों को विशेषकर हरि को, जो आगे चलकर स्वामी तुरीयानन्द हुए, तो स्पष्ट रूप से ऐसा अनुभव होता था कि श्रीरामकृष्ण सदा अपने आनन्दमय स्वरूप में प्रतिष्ठित हैं, और कैन्सर की पीड़ा से पूर्णतः निर्लिप्त है। उनकी इस धारणा का श्रीरामकृष्ण ने अनुमोदन भी किया था।

एक बार किसी गायक ने श्रीरामकृष्ण के सामने एक भजन गाया जिसका आशय था कि यह संसार धोखे की टट्टी है। श्रीरामकृष्ण ने उसे रोकते हुए दूसरा गाना गाया "यह संसार मजे की कुटिया है, जिसमें मैं खाता पीता और मजा लूटता हूँ।" श्री रामकृष्ण कहते थे कि अगर भगवान को पकड़े रहे तो यह दुःखमय संसार आनन्दपूर्ण हो जायेगा। उनकी स्वयं की कोई सन्तान नहीं थी, फिर भी अपने भानजे अक्षय की मृत्यु पर उन्हें मर्मान्तक वेदना हुई थी। यही कारण है कि एक पिता के पुत्र शोक को वे भलि-भाँति अनुभव कर उसे सांत्वना दे सके थे। पुत्र-वियोग से दुःखी पिता को समझाते हुए भी उन्होंने यही कहा था कि दुःख शोकादि तो संसार में सभी को सहन करना पड़ता है, लेकिन जो भगवान को पकड़े रहते है, वे उनसे पूर्ण तरह अभिभूत नहीं हो जाते, दो चार झटके खाकर फिर सम्भल जाते हैं। मृत्यु से घबड़ाये बिना उसका साहस पूर्वक सामना करना चाहिए।

उपसंहार--

उपर्युक्त विश्लेषण से यह तो स्पष्ट ही है कि दुःख कष्ट मानव जीवन के अनिवार्य अंग हैं। कोई भी इनसे अछूता नहीं रह सकता। यदि किसी के शरीर में शारीरिक कष्ट अधिक हैं, तो किसी को मानसिक कष्ट भोगने पड़ते हैं। मानव समाज की रचना भी कुछ इस प्रकार की है कि अभाव, प्रतिद्वंद्विता, संघर्ष उसमें लगे ही रहते हैं। ऐसी स्थिति में विभिन्न महापुरुषों एवं मनीषीयों ने जो विभिन्न उपाय बताये हैं, उनमें से जो जिसे उचित तथा अनुकूल प्रतीत हो, उसकी सहायता से उन दुःखों से निष्कृति प्राप्त की जा सकती है। शारीरिक दुःखों को तो बिना हा-हुलाश किये धैर्य पूर्वक सहन कर लेना चाहिए, जैसे कि भगवान गीता में उपदेश देते है।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्ण सुखदुःखदा।
आगमापायिनो ऽनित्या स्तांन्तितिक्षस्व भारत॥

ये सुख दुःख स्थायी नहीं रहते है। जिस प्रकार आते हैं उसी प्रकार चले जाते भी जाते है। एक और महत्त्पूर्ण बात यह है. कि सहन करते रहने से सहन शक्ति की वृद्धि और दुःखों में लाघवता

आती है। हम धीरे-धीरे उन दुःखों को सहन करने के अभ्यस्त हो जाते हैं।

दुःखों से बचने का दूसरा महत्त्वपूर्ण उपाय है, उनके कारणों को दूर करना। दुःखों का मूल कारण हमारी इच्छाएं, अतृप्त वासनाएँ और आसक्तियाँ हैं, जिनके विषय में सभी एक मत हैं। अतः इन्हें दूर करना परमावश्यक है। गीता के अनुसार तमोगुण का फल अज्ञान और रजोगुण का फल दुख है। सत्त्व गुण से सुख की प्राप्ति होती है।

कर्मणः सुकृत्याहुः सात्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्॥

अतः सत्त्वगुण की वृद्धि, एवं चितशुद्धि का प्रयास दुःखों से छुटकारा पाने के लिए आवश्यक है। इसे गीतोक्त निष्काम कर्मयोग, पंतजलि प्रणीत अष्टांग योग, भगवान बुद्ध द्वारा बताये गये अष्टांग मार्ग, भक्ति योग, अथवा और भी किसी उपाय से किया जा सकता है। दुःख से आत्यन्तिक निवृत्ति तो अद्वैत ज्ञान द्वारा भी संभव है, ज्ञान ही समस्त कालुष्य एवं उसके परिणाम दुःख को पूर्णरूप से भस्म कर सकता है।

जहाँ तक समाज में व्याप्त विषमता, असमानता, शोषण आदि तथा उनसे उत्पन्न समस्याओं का प्रश्न है, उन्हें व्यवहारिक स्तर पर दूर करने का हर संभव प्रयास करना चाहिए। स्वयं के दुःख को महत्त्व न देकर, दूसरों के दुखों को दूर करना, यही महानता का लक्षण है। हमारे दुःखों का एक बड़ा कारण यह है कि हम अपने दुःखों को बहुत अधिक महत्व देते हैं। तथा दूसरों के दुःखों का अनुभव नहीं कर पाते। तुलनात्मक दृष्टि से देखने से हम यह पायेंगे कि हमसे भी कहीं अधिक दुःखी असंख्य लोग इस संसार में हैं। अतः स्वयं के कष्टों को दूर करने के बदले दूसरों के दुखों को दूर करना सभ्य एवं उदार मानव का कर्तव्य है। महापुरुषों ने अपने जीवन द्वारा यही प्रदर्शित किया है। इस विषय में दो श्लोक प्रसिद्ध है :

नत्वहं कामये राज्यं न सुखं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

अर्थात् मैं न तो राज्य चाहता हूँ, न सुख और न ही मोक्ष की कामना करता हूँ। मैं दुःख-तप्त प्राणियों की आर्त्ति के नाश की ही कामना करता हूँ।

को नून उपायो स्यात्येनाहं सर्व देहिनाम्।
अन्तः प्रविश्य, सततं भवेयं दुःख भारभाक्॥

अर्थात् वह कौन सा उपाय है, जिससे मैं समस्त प्राणियों के भीतर प्रवेश कर उनके दुःख के भार को स्वयं सदा वहन कर सकूँ। इति।

जब भगवान् ने तुम्हें संसार में रखा है तो तुम क्या कर सकते हो? सब कुछ उन्हीं के ऊपर छोड़ दो। उनके चरणों में अपने को समर्पित कर दो। ऐसा करने पर फिर कोई कन्ट नहीं रह जाएगा : तब तुम देखोगे कि सब कुछ भगवान् ही कर रहे हैं। सभी कुछ राम ही की इच्छा पर निर्भर करता है।

—श्री श्रीरामकृष्णदेव

विवेक चूड़ामणि

भाष्य—स्वामी वेदान्तानन्द
अनुवादक—डॉ० आशीष बनर्जी

तदात्मानात्मनोः सम्यग्विवेकेनैव सिध्यति ।
ततो विवेकः कर्तव्यः प्रत्यगात्मसदात्मनोः ॥ २०३ ॥

आत्मा क्या है, और अनात्मा क्या है यह ठीक-ठीक विचार करने के पश्चात ही आत्मज्ञान की उत्पत्ति होती है। अतः जीव और ब्रह्म का स्वरूप विचार द्वारा निर्णय करना ही कर्तव्य है। २०३

किस प्रकार विचार करना होगा उसका दृष्टान्त दिया जा रहा है—

जलं पंकवदत्यन्तं पंकापाये जलं स्फुटम् ।
यथा भाति तथात्मापि दोषाभावे स्फुटप्रभः ॥२०४॥

अत्यन्त गँदला जल जिस प्रकार (फिटकरी आदि के संयोग से) कीचड़ के बैठ जाने पर स्वच्छ और निर्मल हो जाता है, अविद्या-दोष के दूरीभूत होने पर आत्मा भी उसी प्रकार स्वमहिमा में प्रकाशित होता है। २०४

मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति न होने पर नित्य सत्य चैतन्यमय आत्मा का स्वरूप प्रकाशित नहीं होता है—

असन्निवृत्तौ तु सदात्मना स्फुटं
प्रतीतिरेतस्य भवेत्प्रतीचः ।
ततो निरासः करणीय एव
सदात्मनः साध्वध्मादिवस्तुनः ॥२०५ ॥

मिथ्याज्ञान की निवृत्ति होने पर जीव को अन्तरतम आत्मा ही नित्य शुद्ध ब्रह्म है, यह प्रत्यक्ष रूप से अनुभूत होता है। इसी कारण सम्यक् रूप से विचार के द्वारा आत्मा में आरोपित अन्तः करण आदि अनित्य वस्तु समूह का बाध करना अति आवश्यक है। २०५

विज्ञानमय कोश चिदात्मा का एक उपाधि मात्र है यही अबतक बताया गया। वह जिस कारण आत्मा नहीं हो सकता वह अब बतलाया जा रहा है—

अतो नायं परात्मा स्याद्विज्ञानमय शब्दभाक् ।
विकारित्वाज्जडत्वाच्च परिच्छिन्नत्वहेतुतः ।
दृश्यत्वाद्व्यभिचारित्वान्नानित्यो नित्य इष्यते ॥२०६

पहले जो सब युक्तियां दी गयी थीं उन सब के अनुसार विज्ञानमय कोश चिदात्मा नहीं हो सकता है। यह बिज्ञानमय कोश विकारशील है (काम, संकल्प आदि विकार इसमें उत्पन्न होते हैं)। यह जड़, देशकाल द्वारा सीमाबद्ध, दृश्यवस्तु एवं व्यभिचारी (सदैव एक रूप नहीं रहता—जैसे सुषुप्तिकाल में यह प्रकाशित नहीं होता है)। इस प्रकार अनित्य वस्तु कभी भी नित्य आत्मा के साथ अभिन्न नहीं हो सकती है। २०६

विज्ञानमय कोश आत्मा नहीं हैं, यह प्रमाणित हुआ। अब आनन्दमय कोश के स्वरूप का विचार किया जा रहा है—

आनन्द प्रतिबिम्ब चुम्बित तनुर्वृत्तिस्तमोजृम्भिता
स्यादानन्दमयः प्रियादिगुणकः स्वेष्टार्थलाभोदयः ।
पुण्यस्थानुभवे विभाति कृतिनामानन्द रूपः स्वयं
सर्वो नन्दति यत्र साधु तनुभृन्मात्रः प्रयत्नं बिना ॥
२०७ ॥

अभीष्ट वस्तु के लाभ होने पर प्रकाशित होने वाली, प्रिय-मोद-प्रमोद रूप मे परिणित, स्थिरीभूत एवं अन्तर्मुख-तमोवृत्ति आनन्द स्वरूप आत्मा के द्वारा प्रतिबिम्बित होकर आनन्दमय-कोशरूप मे परिणित होती है। सौभाग्यशाली व्यक्तियों के पुण्यकर्मों के अनुभव के समय यह आनन्दमय कोश स्वतः प्रकाशित होता है। देहधारी जीव मात्र विना चेष्टा से ही इस आनन्दमय कोश का सुखानुभव करता है। २०७

सुषुप्ति काल मे आनन्दमय कोश को आश्रय कर जीव को आनन्द का अनुभव होता है। बाद मे इसका वर्णन किया जायगा। सुषुप्ति प्रगाढ़ अज्ञानावस्था है; अतएव आनन्दमयकोश अवश्य ही अविद्या का परिणाम है।

'प्रियादिगुणकः'—प्रिय, मोद और प्रमोद—आनन्द-भोग के यह त्रिविध प्रकार आनन्दमय कोश के गुण हैं (तैः उ० २/५)

अभीष्ट विषय के दर्शन से जो आनन्द प्राप्त होता है वह 'प्रिय', उस विषय की प्राप्ति से जो आनन्द होता है वह 'मोद' एवं उसके सम्भोग से जो आनन्द प्राप्त होता है उसे 'प्रमोद' कहते है।

आनन्दमय कोशस्य सुषुप्तौ स्फूर्तिरुत्कटा।
स्वप्नजागर योरीषदिष्ट संदर्शनादिना ॥२०८॥

सुषुप्तिकाल मे आनन्दमय-कोश विशेष रूप से प्रकाशित होता है। स्वप्न दर्शन के समय अथवा जाग्रतकाल मे इष्ट वस्तु के दर्शन-श्रवणादि से इसका यत्किञ्चित भान होता है। २०८

सुषुप्ति काल में अन्तःकरण की समस्त विरोधी वृत्तियाँ लीन हो जाती हैं तब आनंदमय कोश विशेष रूप से स्फुटित होता है। जाग्रत एवं स्वप्न काल में वृत्ति जितने अंश में अन्तर्मुख रहती हैं, उतने ही अंश मे आनन्दमय-कोश प्रकाशित होता है।

ईष्टसन्दर्शनादि—जाग्रत काल में ज्ञानेन्द्रियों के सहित विषयों के संयोग के फलस्वरूप रूपरसादि के अनुभव एवं स्वप्नावस्था में इन सब की स्मृति समझनी होगी।

आनन्दमयकोश आत्मा नहीं हो सकता उसका कारण बतलाते हैं—

नैवायमानन्दमयः परात्मा सोपाधिकत्वात्प्रकृतोविकारात्।
कार्यत्वहेतोः सुकृतक्रियाया विकारसंघात समाहितत्वात् ॥
२०९॥

तमोगुणी रूप उपाधियुक्त होने के कारण, प्रकृति का परिणाम होने के कारण, पूर्वकृत पुण्य-कर्म समूह के फलस्वरूप उत्पन्न होने के कारण एवं अन्नमयादि विकार समूहों मे वर्तमान होने के कारण यह आनन्दमय कोश भी परमात्मा नहीं हो सकता। २०९

आनन्दमय कोश 'विकारसंघातसमाहित' हैं, इस विषय मे श्रुतिप्रमाण हेतु तैत्तिरीय उपनिषद (द्वितीय अध्याय) से उदाहरण देते हैं —

पञ्चानामपि कोशानां निषेधे युक्तितः श्रुतेः।
तन्निषेधावधि साक्षी बोधरूपोऽवशिष्यते ॥ २१०

युक्ति द्वारा एवं श्रुति प्रमाण की सहायता से अन्नमयादि पांच कोश आत्मा नहीं हैं यह प्रमाणित होने पर यह मिथ्या प्रमाणित कोश समूह जिसके आश्रय में प्रकाशित होते है, वह स्वयं प्रकाश चैतन्य स्वरूप आत्मा अवशिष्ट रहता है।

रज्जु में सर्पभ्रम दूर होने पर, उस भ्रम का अधिष्ठान रज्जु, जो सर्पभ्रम के पूर्व एवं सर्प भ्रम के समय वर्तमान था; वह वैसा ही वर्तमान रहता है। अपरिवर्तनशील रज्जु में जिस प्रकार सर्पभ्रम होता है, उसी प्रकार साक्षी एवं चैतन्य स्वरूप आत्मा में देह, इन्द्रिय, पंचकोशादि एवं समस्त जगत का भ्रम होता है।

बोध रूप आत्मा को 'निषेधावधि' कहा गया है। क्योंकि, युक्ति या विचार आत्मा में ही निरस्त होते है, इसके आगे नहीं जा सकते। विचार की

सहायता से, आनन्दमय कोश भी आत्मा नहीं है, यह निश्चय दृढ़ होने पर साधक को आत्म स्वरूप की अनुभूति होती है।

आत्मा पंचकोश से भिन्न है इस विषय मे श्रुति प्रमाण--"अस्थूलम् अनणु, अह्रस्वम् अदीर्घम् अलोहितम् अस्नेहम् अच्छायम् अतमोह वायु अनाकाशम् असंगम अरसम् अगंधम् अचक्षुष्कम् अश्रोत्रम् अवाग् अमनोहतेजस्कम् अप्राणम् अमुखम् अमात्रम् अनन्तरम् अवाह्यम् न तत् अश्नाति किंचन न तदश्नाति कश्चन।" वृ ३/८/८ 'आत्मा स्थूल सूक्ष्म ह्रस्व या दीर्घ नहीं है। (द्रव्य के ये चार गुण आत्मा के नहीं है) आत्मा (अग्नि का गुण, लौहित्य एवं (जल का गुण) शीतलता वर्जित है। आत्मा छाया या अन्धकार नहीं है। आत्मा वायु या आकाश नहीं है। वह आसक्ति रहित, रसवर्जित, गंध विहीन; वह चक्षू कर्ण-जिह्वा-मनः तेजः प्राण-मुख रहित है। वह परिमाण रहित (दूसरे को परिमित नहीं करता, स्वयं भी दूसरे के द्वारा परिमित नहीं होता है।) वह अवकाश रहित एवं बाह्य शून्य (उसके अन्दर तथा बाहर दूसरी को वस्तु नहीं है)। वह कुछ आहार नहीं करता, तथा दूसरे भी उसका भक्षण नहीं करते हैं।'

योऽयमात्मा स्वयं ज्योतिः पञ्चकोश विलक्षणः।
अवस्थात्रय साक्षी सन्निर्विकारो निरञ्जनः।
सदानन्दः स विज्ञेय स्वात्मत्वेन विपश्चिता ॥२११॥

पंचकोश से भिन्न स्वप्रकाश यह आत्मा, अवस्थात्रय का साक्षी, निर्विकार, निरन्जन एवं आनन्द स्वरूप है। विद्वान पुरुष (श्रुति, युक्ति एवं अनुभव की सहायता से) इस शुद्ध आत्मा को स्व आत्मा से अभिन्न जानते हैं।

स्वयंज्योतिः— विषय रूप में ज्ञान का विषय न होने पर भी अपरोक्ष रूप में अनुभूत है। आत्मा के पंचकोशातीत होने का श्रुति प्रमाण है।

तै० उ० २/८

★

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥

—'जो आत्मा में रत है, जो आत्मतृप्त है और जो आत्मा में ही सन्तुष्ट है, उसके करने के लिए और कौन कार्य शेष रह गया है ?'

—गीता (३/१७)

सोने का नेवला

(यह कहानी महाभारत के अश्वमेघ पर्व में है। कर्म में स्वार्थ-त्याग की महत्ता सिद्ध करने हेतु स्वामी जी ने अपने कर्म योग नामक ग्रन्थ में इस कहानी को संकलित किया है।)

कुरुक्षेत्र के युद्ध के पश्चात् राजा युधिष्ठिर ने अवश्मघ यज्ञ किया। यज्ञ में उन्होंने ब्राह्मणों और गरीबों को विपुल धन दान में दिया। राजा के इस दान की महिमा चारों दिशाओं में फैल गयी। सभी एक ही बात कहते कि ऐसा यज्ञ किसी ने नहीं किया, किसी ने देखा तक नहीं।

यज्ञ जब खत्म होने को आया तब अचानक एक छोटा नेवला आकर यज्ञ भूमि में लोटने लगा। उसके शरीर का आधा भाग सोने का था। इस अद्भुत् नेवले को इस प्रकार यज्ञ भूमि में लोटते देख सभी आश्चर्य चकित हो गये। लोग और अधिक चकित रह गये जब उन्होंने देखा कि वह नेवला मनुष्य की भाँति बातें करने लगा। यज्ञ-सभा में सभी छोटे-बड़े इस अद्भुत् काण्ड को चकित नेत्रों से अपलक निहार रहे थे। नेवले ने कहा "तुम लोग सब झूठी बात कह रहे हो। युधिष्ठिर का यह यज्ञ, यज्ञ ही नहीं है। यह अगर ठीक यज्ञ होता तो मेरा सम्पूर्ण शरीर सोने का हो जाता।"

उपस्थित व्यक्तियों में से एक ने पूछा, "नेवले, तुम यह सब क्या कह रहे हो ? तुम्हें क्या मालूम है कि हमारे राजा ने इस यज्ञ में कितना धन रत्न दान किया है ? फिर, भी तुम इस यज्ञ की निन्दा कर रहे हो। तुम्हें पता नहीं कि इस यज्ञ का प्रत्येक कार्य शास्त्र और महापुरुषों के उपदेशानुसार सम्पादित हुआ है। कहीं भी थोड़ी त्रुटि नहीं हुई है।" यह सुनकर वह नेवला मनुष्य की भाँति हँसने लगा। उसने कहा "यह सब जानना, मेरे लिए आवश्यक नहीं हैं मैं फिर कहता हूँ कि यह यज्ञ यज्ञ ही नहीं है।"

तुम्हारे कथन का प्रमाण क्या है ?

"प्रमाण मेरा शरीर है, स्वयं मैं प्रमाण हूँ।" सभी आश्चर्य से नेवले की बातों को सुनने लगे। नेवले ने कहा "एक यज्ञ मैंने देखा था उसी की बात मैं तुम लोगों को सुनाता हूँ। कुरुक्षेत्र में एक धार्मिक ब्राह्मण रहते थे। वे कुछ भी उपार्जन नहीं कर पाते थे। भिक्षा से प्राप्त धन से उनका निर्वाह होता था। उनके परिवार में उनके अलावा उनकी स्त्री, पुत्र तथा पुत्र वधू थी। ब्राह्मण प्रतिदिन भिक्षा माँगकर घर आता। इसके बाद अतिथि अभ्यागतों की सेवा के बाद जो कुछ बचता, उसे ही वे चारों बाँट कर खा लेते। इसी प्रकार वे अपना जीवन निर्वाह कर लेते।

कुछ दिन बाद उस प्रदेश में भयानक अकाल पड़ा। ब्राह्मण प्रतिदिन भिक्षा माँगने के लिए निकल जाता। परन्तु हर रोज उसे खाली हाथ लौटना पड़ता। अन्ततः ब्राह्मण के घर में सभी उपवास करने लगे। कई दिनों के उपवास के पश्चात् एक दिन ब्राह्मण को कुछ जौ मिला। ज्वार पाकर ब्राह्मण परिवारके आनन्द की सीमा न रही। उस ज्वार से सत्तू बनाया गया।

सत्तू को चार भागों में बाँटा गया। वे भोजन करने बैठने ही वाले थे कि उन्होंने देखा द्वार पर कोई अतिथि खड़े हैं। अतिथि भूख के मारे कातर

हुए जा रहे थे। ब्राह्मण उन्हें सादर अन्दर ले लाया अतिथि ने कहा, भूख से मेरे प्राण निकले जा रहे है। शीघ्र ही मुझे भोजन दें।"

ब्राह्मण ने तुरन्त अपना हिस्सा अतिथि को लाकर दिया। अतिथि को इतनी भूख लगी थी कि वे पल भर में ही सारा सत्तू खा गये। खाने के बाद अतिथि ने कहा 'इस थोड़े से भोजन से मेरी भूख नहीं मिटी है। कुछ और दीजिए।"

ब्राह्मण सोच में पड़ गये। और क्या देकर अतिथि को तृप्त किया जाय। ब्राह्मण के मनोभावों को उस के परिवार वाले समझ रहे थे। ब्राह्मण की पत्नी ने कहा, क्यों उतना सोच रहे हैं? मेरा हिस्सा भी अतिथि को दे दें। अतिथि तो देवता होता है। उसकी सेवा करना हमारा कर्त्तव्य हैं। ब्राह्मण ने कहा उपवास करते-करते तुम्हारी हड्डियों के सिवा कुछ नहीं बचा है। तुम्हारा भोजन कैसे दे दूँ?

अतिथि बैठे हुए हैं। जाइए शीघ्र आप उन्हें मेरा हिस्सा दे आइए। तुम्हारा धर्म ही मेरा भी धर्म है। तुम्हारे कर्त्तव्य में त्रुटि होने से हमारे कर्तव्य में भी त्रुटि होगी। तुम्हारी बात मैं नहीं मानूँगी। जाओं मेरा हिस्सा अतिथि को देकर उसकी सेवा करो।

और कोई उपाय न देखकर ब्राह्मण ने अन्ततः वही किया। परन्तु अतिथि ने तुरन्त दूसरे हिस्से को खाकर कहा, और यदि कुछ हो तो मुझे दें। भूख मिटती ही नहीं। "ब्राह्मण सोच में पड़ गये। इसे देख ब्राह्मण के पुत्र ने कहा, "पिताजी, आप सोचिए मत। मेरा हिस्सा तो है। अतिथि को आप वही दे आइए।"

ब्राह्मण के मुख से स्वर ही नहीं निकल रहा था। उसने कहा बेटे तुम अभी छोटे हो। तुम्हारा शरीर उपवास सहन नहीं कर सकता। हम लोग तो वृद्ध हो चले हैं। हमारे शरीर में सहन-शक्ति है, हमें उतना कष्ट नहीं होता। कई दिनों से तुमने खाया नहीं है। कैसे मैं तुम्हारा हिस्सा दे दूँ?

बेटे ने कहा, "पिताजी, अतिथि तो नारायण होते हैं। अतिथि-सेवा सर्वप्रथम कर्तव्य होता है। मेरे कष्ट के लिए आप क्यों डर रहे हैं मुझे कुछ नहीं होगा। आप मेरा हिस्सा भी अतिथि को दे आइए।" ब्राह्मण अत्यन्त दुःखित हुए। वे अपने बेटे के हिस्से को ले ही नहीं पा रहे थे। परन्तु और कोई उपाय न था। अन्त में वे उस हिस्से को भी अतिथि को दे आये। अतिथि ने उसे भी खत्म कर पूछा, आप के घर में बचा और कुछ नहीं है?

इस बार ब्राह्मण अत्यन्त सोच में पड़ गये। सिर्फ पुत्रवधू का हिस्सा बाकी रह गया था। परन्तु वे अपने मन को और कठोर नहीं कर पा रहे थे। इधर अतिथि की क्षुधा अब तक तृप्त न हुई थी। क्या किया जाए, यही सोचते हुए वे अन्दर खड़े थे। श्वसुर की इस अवस्था को देखकर पुत्रवधू ने कहा पिताजी, आप उतनी चिन्ता क्यों कर रहे हैं? मेरा हिस्सा तो बचा हुआ है। उसे ही आप अतिथि को दे दीजिए। अतिथि हम सब के लिए नारायण है।"

इस कथन को सुन ब्राह्मण स्वयं को संभाल न सके और रो पड़े। उन्होंने कहा "हमारा वृद्ध शरीर जो सहन कर रहा है, वह तुम्हारा शरीर नहीं सह सकता। भोजन के अभाव में तुम्हारे शरीर की हालत क्या हो गयी है? मैं देखने की हिम्मत तक नहीं कर सकता?

श्वसुर को सान्त्वना देकर पुत्रवधू ने कहा "आप मेरे गुरु के गुरु है, देवता के देवता है। आप की थोड़ी सेवा कर के भी मुझे कितना आनन्द होता हैं यह तो आपको पता है। अतिथि नारायण बैठे हैं। आप देर न कीजिए।

जोर-जबरदस्ती कर उसने सत्तू को श्वसुर के हाथों में डाल दिया। ब्राह्मण के हाथ काँप रहे थे। वे उसके हिस्से को अतिथि को देना न चाहते परन्तु अतिथि की सेवा करनी ही थी। अतः पुत्र-वधू के हिस्से को भी उन्होंने अतिथि को दे ही दिया। अतिथि की राक्षसी क्षुधा तब जाकर शांत हुई। अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्राह्मण को आशीर्वाद देते हुए वे चले गये।

मानव का जीवन ही एक परीक्षा है। ईश्वर नाना प्रकार से मानव की परीक्षा लेते हैं। अतिथि रूप में ईश्वर ने आज गरीब ब्राह्मण की परीक्षा ली। इस तरह कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण होना सबके बस की बात नहीं। ब्राह्मण परिवार उपवास करते अपने जीवन की शेष सीमा पर पहुँच गया था। वे और बच न सके। उस रात तक उन चारों की मृत्यु हो गयी।"

नेवले ने थोड़ा रुककर फिर कहा, "मैं उसी ब्राह्मण के घर रहता था। इस घटना को मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है। जिस स्थान पर बैठ अतिथि ने भोजन किया था वहाँ थोड़ा सत्तु पड़ा हुआ था। पता नहीं क्यों, मैं जाकर उस सत्तू के ऊपर लोटने लगा। इसी के उपरांत मेरा आधा शरीर सोने का हो गया। बाकी आधे को सोने का बनाने के लिए मैं सारी पृथ्वी घूम रहा हूँ। छोटा बड़ा जहाँ भी जो यज्ञ हो रहा है, मैं उसी भूमि में लोटता हूँ। परन्तु मेरा शरीर वैसा ही है। यहाँ आकर भी मैं लौटा परन्तु कोई परिवर्तन न हुआ। इसी लिए मैं यह कह रहा हूँ कि यह यज्ञ यज्ञ न हुआ। गरीब ब्राह्मण ने अतिथि सेवा का जो यज्ञ किया था, उसके साथ युधिष्ठिर के इस यज्ञ की तुलना हो सकती है? तुम्हीं कहो?"

उपस्थित सभी लोग निर्वाक, निस्पन्द खड़े हैं।

विवेक शिखा—स्थायी कोष के दाता

११. श्री रामलायक सिंह	—	सम्होता (छपरा)	२५ रुपये
१२. डा० एस पी० भार्गव	—	अजमेर	१०० रुपये
१३. श्री राम छविला सिंह	—	मुजफ्फरपुर	२५ रुपये
१४. श्री निखिल शिवहरे	—	दमोह (म० प्र०)	१५१ रुपये
१५. श्रीमती उषारानी कर्ण	—	सुरसंड, (सीतामढ़ी)	१०० रुपये
१६. श्री पी० सी० सरकार	—	नरेन्द्रपुर (प० ब०)	१०० रुपये
१७. श्रीमती मीरा मित्रा	—	इलाहाबाद	२०१ रुपये
१८. श्री गोपाल शं० तायवाडे	—	अमरावती (महाराष्ट्र)	१०० रुपये
१९. श्री महादेव शि० गुंडावार	—	भद्रावती (महाराष्ट्र)	५० रुपये
२०. श्री राजीव कुमार राजू	—	सैदपुर, पटना-४	३१ रुपये
२१. श्री राज सिंह	—	गाजियाबाद (उ० प्र०)	५० रुपये
२२. श्री चन्द्र मोहन	—	टुण्डला (उ० प्र०)	९८५ रुपये
२३. श्री के० अनूप	—	अरुणाचल प्रदेश	२० रुपये
२४, श्री शतदल खान	—	सोनारपुर(पश्चिम बंगाल)	१०० रुपये
२५. श्री ए० जी० ठगाँवकर	—	यवतमाल	५१ रुपये
२६. श्री शतदल साधुखान	—	सोनपुर २४ परगना	

निवेदन—१. स्थायी कोष के लिए दान सम्पादकीय पते पर भेजने की कृपा करें।
२. चेक या ड्राफ्ट "विवेक शिखा" के नाम से भेजें।

(अगले अंक में प्रकाशित देवदूत जरथुस्त्र का शेषांश)

सातवीं शताब्दी में ईरान पर अरब के आक्रमण के पश्चात यदि ईरानी उदधार-कर्त्ता उदाकी, दकीकी, फिरदौसी, सादी, हाफिज, निजामी, रुमी, ओमरखैयाम, इश्की, स्पेंटा, पीरेदाऊद और बहुतेरे कवियों का प्रेरणादायक प्रयास नहीं हुआ होता जिनकी थर्रा देने वाली कविताएँ पुण्य मठाओं का प्रतिपादन और स्पस्ट आलोचनाओं को छोड़कर और कुछ नहीं था तो जैसा मिस्र और बैजटाइन में हुआ, ईरानी सभ्यता और संस्कृति ईरान से पूर्णतः साफ हो जाती। वास्तव में हाफिज अपनी भजनावली में निरन्तर पीर-ए-मोगन को को उद्धृत करते हैं जिसका मतलब है मैगियन पैट्रार्क। यदि पीर-ए-मोगाना शब्द के फारसी अक्षरों के अंकों की कीमत जोड़ी जाय तो वह कीमत १,३०८ ठीक उतनी ही होती है जो जरातुस्त फारसी नाम ज़राथुस्त्र शब्द के फारसी अक्षरों के अंकों की कीमत।

मानवता के जराथुस्त्र के सदेश का वर्गीकरण एवं विचार निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :—

(क) रहस्यवाद :—

1. आहूरा मजदा में विश्वास
2. आत्मा का अमरत्व अर्थात् मृत्यु के बाद प्राण।
3. अग्नि, देवत्व के प्रतीक के रूप में।

(ख) दर्शन :—

1. शुभ और अशुभ का वैशिष्ट्य।
2. शुभ और अशुभ की शक्तियों के बीच जीवन एक नित्य संघर्ष है।

(ग) नीति शास्त्र तथा सदाचार :—

पावन त्रिक :

ह्यू माता (नीतिपरायण विचार)

ह्यू उक्ता (नीतिपरायण वचन)

ह्यू वर्शता (नीति परायण कर्म)

मजदयसना एक गतिशील, प्रगतिशील एवं विकाशशील धर्म है। हजारों वर्ष पहले, सृष्टि के समय जो शिक्षा इसने दी थी उस अन्तिमता का दाता यह नहीं करता। दूसरे धर्मों के उत्साही, विद्वान पंडित जो हर कोई अपने पवित्र शास्त्र के लिए दावा करते हैं कि—जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है, वैसा मजदयासनी देवदूत नहीं कहते। वे जमशेद जराथुस्त्र, फिरदौसी और उनके योग्य उपर्युक्त उत्तराधिकारी यथेष्ट नम्र और सत्य परायण थे। वे समझते थे कि सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् इतने व्यापक और असीम हैं कि वे किसी एक धर्मशास्त्र वा सभी शास्त्रों के सम्मिलित सीमित क्षेत्र में सीमाबद्ध नहीं किये जा सकते।

पवित्र दूतदूत, जराथुस्त्र ने हमें पवित्र त्रिक, इयू माता, इयू उक्ता और इयू वर्द्धता की अमूल्य कसौटी दी है जिससे जितने भी विद्वान और पवित्र व्यक्ति या ग्रन्थ, वे या ये, क्यों न हों, उनके विवरण की सच्चाई और वैद्यता जाँची जा सकती है। यदि विवरण त्रिक के अनुरूप हो तो पूरे हृदय से स्वीकार कर लो, यदि नहीं, तो बिल्कुल परित्याग कर दो।

'स्पेसशीप' की बाईं जो समुपयुक्त अवस्था में स्वतः रॉकेट को गोली मारता रहता है ताकि जहाज उत्तरोत्तर ऊपर उड़ता रहे, उसी प्रकार जरथुस्त्र के उत्तराधिकारियों ने जैसे फिरदौसी और दूसरे-दूसरे अद्वितीय कवि जिनके नाम उपर्युक्त है, मजदयसना की प्रगति को बनाये रखा। इसके लिए उन्होंने युग-युगान्तर में उपदेशों का सुन्दरतम फारसी में विस्तार किया जो सभी भाषाओं से अधिक मधुर है। मजदयसनावाद को पूर्णतः समझने के लिए उनकी रचनाओं का अध्ययन, अधिमान्यता क्रम से, फारसी में करना अनिवार्य है।

अंग्रेजी में मजदयसनावाद ए० एस० वाडिया द्वारा उनके "जोरोस्टर का संदेश" (जे० एम० डेण्ट एण्ड सन्स लन्दन, १९११) में सर्वोत्कृष्ट रूप से पकड़ा गया है, जबकि 'रेशनेल ऑफ मजदयसना' दस्तूरान-ए-दस्तूर एम० एन० ढाला द्वारा उनके "होमेज अनटू आहूरा मजदा" (१९४७) में अति सुन्दर ढंग से प्रतिपादित किया गया है।

इस पुस्तिका में जो निम्नलिखित है, अधिकाँशतः इन्हीं दो अधिकारियों से लिया गया है, संकलन-कर्ता द्वारा निकाले गये निष्कर्ष को छोड़ कर जो उनके सैंतालीस वर्षों का मूल धर्मशास्त्र और सभी विचारों की छटा के प्रसिद्ध विद्वानों के अध्ययन का फल है जिसमें फिरदौसी से लेकर ऊपर लिखित ईरानी कवियों को अमर तथा प्रेरणा-दायक पद भी शामिल हैं। (दसवीं शताब्दी से अगा पोर-ए-दाऊद बीसवीं शताब्दी तक)।

श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम

रामकृष्ण निलयम्
फोन : २६३९ जयप्रकाश नगर, छपरा-८४१३०१ (बिहार)

विनम्र निवेदन

श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम की स्थापना भगवान श्रीरामकृष्ण के एकमात्र गैर-बंगाली शिष्य और स्वामी विवेकानन्द के गुरु-भ्राता स्वामी अद्भुतानन्द जी महाराज की स्मृति में १९८४ ई० में की गयी। स्वामी अद्भुतानन्द जी का जन्म बिहार राज्य के छपरा जिला के एक गाँव में एक निर्धन गड़ेरिया परिवार में हुआ था। निरक्षर होने पर भी श्रीरामकृष्ण के आध्यात्मिक निर्देशन में वे ब्रह्मज्ञ हुए और स्वामी विवेकानन्द ने श्रीरामकृष्ण की अद्भुत सृष्टि जानकर उन्हें स्वामी अद्भुतानन्द नाम से अभिहित किया।

आश्रम ने प्रायः २ एकड़ भूमि ९६ ००० रुपये में बिहार सरकार से अर्जित की। श्री रामकृष्ण के बिहार एवं बिहार के बाहर के भक्तों के कृपापूर्ण दान से ३५००० वर्गफीट में स्वामी अद्भुतानन्द स्मृति-भवन का निर्माण हो रहा है जिसमें भगवान का एक गर्भगृह (मन्दिर), प्रार्थना भवन २ कमरों स्नानागार युक्त संत-निवास एक बड़ा पुस्तकाय कक्ष, एक दातव्य औषधालय कक्ष, कार्यालय-कक्ष, भोजनालय, रसोई घर, राहत-भवन, भण्डार गृह आदि संयुक्त हैं। इसमें अब तक ७ लाख रुपये व्यय हो चुके हैं। निर्माण कार्य समाप्तप्राय है। किन्तु इसे अन्तिम रूप देने में अभी लगभग २ लाख रुपये और लगने की सम्भावना है।

अतः आपसे हमारा आन्तरिक एवं विनम्र निवेदन है कि इस महत् कार्य में अपनी सामर्थ्य एवं गरिमा के अनुरूप उदारतापूर्ण दान देकर हमें कृतार्थ करें। इस कार्य में बड़ा दान भी कम है और कम दान भी बहुत बड़ा है। आपका कोई भी दान हमारे लिए बहुत बड़ा सम्बल सिद्ध होगा।

प्रेम और शुभेच्छाओं के साथ

प्रभु सेवा में आपका

डा० केदार नाथ लाभ
सचिव

ध्यातव्य : (१) सभी प्रकार के दान सधन्यवाद स्वीकार किये जायेंगे।

(२) चेक या बैंक ड्राफ्ट "श्री रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम" छपरा के नाम से क्रॉस किये हुए होने चाहिए।

(३) श्री रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम को दिये गये सभी दान आय-कर के अधिनियम ८० जी. के अन्तर्गत आय-कर से मुक्त हैं।

डाक पंजीयित संख्या – सी. एन. पी – १४–८३

स्वामी विवेकानन्दकृत सम्पूर्ण साहित्य

पुस्तक	मूल्य
योग	
ज्ञानयोग	१४.००
राजयोग (पातञ्जल योगसूत्र, भाष्य और व्याख्यासहित)	९.००
प्रेमयोग	६.००
कर्मयोग	६.००
भक्तियोग	६.००
ज्ञानयोग पर प्रवचन	२.००
सरल राजयोग	२.००
धर्म तथा अध्यात्म	
धर्मविज्ञान	५.००
धर्मतत्त्व	४.५०
धर्मरहस्य	३.००
हिन्दूधर्म	६.००
हिन्दूधर्म के पक्ष में	२.००
शिकागो वक्तृता	१.५०
नारदभक्तिसूत्र एवं भक्तिविषयक प्रवचन और आख्यान	३.००
भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता	५.००
भगवान बुद्ध तथा उनका सन्देश	३.००
देववाणी (उच्च आध्यात्मिक उपदेश)	१२.००
कवितावली (आध्यात्मिक अनुभूतिमय काव्य)	४.००
वेदान्त	६.२५
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त	३.५०
आत्मतत्त्व	३.५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग	५.००
मरणोत्तर जीवन	१.५०
जीवनी	
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ	६.००
मेरे गुरुदेव	२.५०
ईशदूत ईसा	१.००
पवहारी बाबा	२.००

पुस्तक	मूल्य
सम्भाषणात्मक	
विवेकानन्दजी के संग में	१३.००
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप	५.००
विवेकानन्दजी के संस्मरण	५.००
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में	३.००
विविध	
विवेकानन्द साहित्य संचयन (महत्त्वपूर्ण व्याख्यान, लेख, पत्र काव्य आदि का प्रातिनिधिक संचयन)	२५.००
,, (सस्ता संस्करण)	१५.००
पत्रावली — (धर्म, दर्शन, शिक्षा, समाज राष्ट्रोन्नति इत्यादि सम्बन्धी स्फूर्तिदायी पत्र)	२१.००
भारतीय व्याख्यान	२०.००
भारत का ऐतिहासिक क्रमविकास एवं अन्य प्रबन्ध	४.००
हमारा भारत	१.५०
वर्तमान भारत	२.५०
नया भारत गढ़ो	२.५०
भारतीय नारी	४.००
जाति, संस्कृति और समाजवाद	४.००
शिक्षा	५.५०
सार्वलौकिक नीति तथा सदाचार	३.५०
मन की शक्तियाँ तथा जीवन-गठन की साधनाएँ	१.५०
विविध प्रसंग	९.००
चिन्तनीय बातें	४.००
परिव्राजक (मेरी भ्रमणकहानी)	४.५०
प्राच्य और पाश्चात्य	४.५०
युवकों के प्रति	१०.००
विवेकानन्द– राष्ट्र को आह्वान (पॉकेट साईज)	१.२५
शक्तिदायी विचार (,,)	१.००
सूक्तियाँ एवं सुभाषित (,,)	१.००
मेरी समर-नीति (,,)	१.००
मेरा जीवन तथा ध्येय (,,)	१.००

प्रकाशक : रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर–४४००१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना – ४ में मुद्रित।